तरुण सीरीज़



रोद की गत

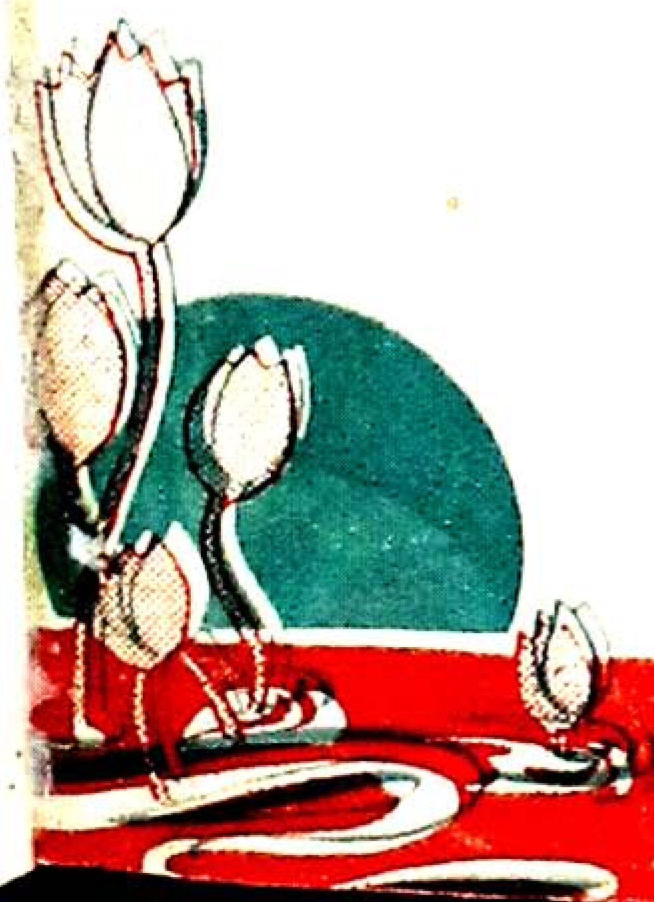
लेखक

प्रसाद मिश्र, एम० ए०

इस संग्रह में

- सामाजिक
- ऐतिहासिक
- रोमान्टिक और
- घटनापूर्ण

मौलिक कहानियाँ पढ़िए



तरुण कार्यालय
इलाहाबाद

तरुण सीरीज़ नं० १२

Sarood ki Gat

T.

सरोद की गत

(8 stories)

[६ रोचक कहानियों का संग्रह]

लेखक

श्री गंगाप्रसाद मिश्र, एम० ए०, बी० ए० (आनर्स)

['विराग' और दूसरी पुस्तकों के रचयिता]

अध्यापक, गवर्नमेन्ट हाई स्कूल, हरदोई

Ganga Prasad Mishra



तरुण कार्यालय, इलाहाबाद

प्रकाशक
कृष्णनन्दन प्रसाद
तरुण कार्यालय, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
मूल्य एक रुपया

मुद्रक
मगनकृष्ण दीक्षित
दीक्षित प्रेस, इलाहाबाद

डाक्टर रामविलास शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०

के कर कमलों में

सादर समर्पित

—गंगाप्रसाद मिश्र

परिचय

श्री गंगाप्रसाद मिश्र उदीयमान कथाकार हैं। पिछले सात-आठ वर्षों से हिन्दी के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में इनकी कहानियाँ प्रकाशित होती रही हैं। प्रस्तुत संग्रह इनकी कला का सच्चा द्योतक नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसमें अधिकतर इनकी प्रारम्भिक रचनाएँ हैं। पहले हमारा विचार संग्रह में कुछ और कहानियों को सम्मिलित करने और संग्रह का नाम 'नरक के कीड़े' रखने का था मगर लोकप्रियता और मनोरंजकता का अधिक ध्यान रखते हुए संग्रह की कहानियों में इतना हेरफेर करना पड़ा कि संग्रह 'नरक के कीड़े' से 'सरोद की गत' हो गया। इस तरह कुछ अच्छी कहानियाँ छाँट देने का मुझे खेद है परन्तु आशा है कि इस रूप में यह संग्रह सभी तरह के पाठकों का मनोरंजन कर सकेगा।

लेखक की पहली पुस्तक 'विराग' (उपन्यास) सन् १९४१ में प्रकाशित हुई थी। हर्ष की बात है कि हाल में ही इनका एक और उपन्यास छप कर तैयार हुआ है और इस संग्रह के अतिरिक्त एक और कहानी-संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

—प्रकाशक

सूची

सरोद की गत

रामपुर के शराफ़तहुसेन अगर सरोद बजाने में अद्वितीय थे तो लियाक़त ख़ाँ सितार बजाने में बेजोड़। शराफ़त जिस समय सरोद बजाते, लोग अवाक् रह जाते। उनकी समझ में न आता कि तार का यह निर्जीव बाजा किस तरह शराफ़त के हाथ में आते ही सजीव बनकर बोल बोलने लगता है। वे वाह-वाह कर उठते—शराफ़त के हाथ की फुर्ती पर, स्वरों के निकालने की प्रवीणता पर; और फिर भी समझ न पाते कि वह ऐसा सरोद किस प्रकार बजा सकते हैं?

और जब लियाक़त ख़ाँ सितार बजाते, दर्शक अपना आपा भूल जाते। वे बे-सुध होकर झूमने लगते। उनके सितार की मीड़ का एक-एक स्वर दर्शकों के हृदय को छूता हुआ उन्हें पागल बना देता। रात की महफ़िलों में जब लियाक़त बिहाग बजाने लगते, तो लोगों की भावुकता इतनी बढ़ जाती कि बहुत से अपना सिर धुनने लगते और बहुत से आँसू बहाने लगते। शराफ़त के सरोद की तरह लियाक़त के सितार बजाने के समय लोग वाह-वाह के नारे न लगाते। असलियत तो यह थी कि उन्हें इस बात की सुध ही न रहती थी।

शराफ़त थे कला के पुजारी, विचित्रता के भक्त। जनता उन्हें आदर की दृष्टि से देखती और उनकी कुशलता पर दाँतों तले उँगली दबाती थी। और लियाक़त थे स्वाभाविकता और मिठास के पीछे दीवाने। झाला फेंकते समय वे एक-एक स्वर ऐसा मीठा और मन को मोहनेवाला लगाते थे कि सुननेवाले की इच्छा होती कि लियाक़त के पैरों में जाकर लेट रहे और जीवनपर्यंत वही स्वर सुनता रहे।

फिर भी नामों को देखते हुए ये दोनों अपने नामों से जैसे बिल्कुल विपरीत स्वभाव रखते थे। शराफ़त में लियाक़त बहुत थी और लियाक़त में शराफ़त। मतलब यह है कि शराफ़त में चाहे शराफ़त कौड़ी भर भी न थी पर उनके लियाक़तमन्द होने में किसी को शक न था। शराफ़त ज़रा तेज़-तर्रार और चिड़चिड़े थे और होड़ लगाने की वृत्ति उनमें इस हद तक बढ़ी हुई थी कि कभी वह शराफ़त की हद ही लाँघ जाते थे।

एक बार एक महफ़िल में शराफ़त सरोद बजाने बैठे। काफी ठहरे हुए बढ़िया स्वरों में वे एक दरबारी की गत बजा रहे थे कि उनके हृदय में तबले वाले को नीचा दिखाने की इच्छा हो आई और फ़ौरन ही उन्होंने लय बढ़ाना शुरू कर दिया। तबलिया भोला कथिक कोई ऐसा-वैसा तबला बजाने वाला न था। एक ज़माने से उसके ख़ानदान में यही पेशा चला आ रहा था। वह भला कब पीछे हटने वाला था। शराफ़त के लय बढ़ाते ही वह भी बढ़ा। शराफ़त दुगुन से चौगुन और

चौगुन से छगुन पर आए पर भोला ने एक मात्रा का भी बल न पड़ने दिया। तारीफ़ यह थी कि इतनी बढ़ी हुई लय में भी भोला तबले के स्वर को सरोद से बिल्कुल भिड़ाए हुए था। शराफ़त छगुन से अठगुन पर आए और भोला ने भी साथ दिया। सरोद और तबले के स्वर उस समय ऐसे मिल रहे थे जैसे एलाहाबाद में गंगा और जमुना का जल, जो मिलते हुए भी अलग रहते हैं और अलग रहते हुए भी मिले रहते हैं। शराफ़त और भोला दोनों पसीने-पसीने हो रहे थे; पर कोई हार न मानता था। सुनने वालों की बन आई थी। पर उनमें दो-चार बुद्धिमान भी थे, जो जानते थे कि इसका अन्त झगड़े में होगा। इसलिए एक ने लपक कर शराफ़त के हाथ से सरोद छीन लिया और दूसरे ने भोला के हाथ से तबला। शराफ़त अकड़ कर बोले—"यह क्या किया आपने? थोड़ी ही देर थी कि उँगलियाँ सूज आतीं, तब मालूम होता कि कभी किसी के साथ तबला बजाया था।" भोला ने कहा—"हाँ उस्ताद, ठीक कहते हो, उँगलियों के पोर अगर अलग न हो जाते तो सरोद के तार तो अलग हो ही जाते।"

दूसरी ओर थे लियाक़त जो शराफ़त के सजीव पुतले थे। जिससे बोलते थे झुक के और आजिज़ी से। अपने आपको सरस्वती का दास कहते और कभी एक शब्द भी अपनी तारीफ़ में न कहते थे। जो कोई उनकी तारीफ़ करता तो कहते— "जो कुछ है सरस्वती मैया का परसाद है, वर्ना मैं नाचीज़ किस

क़ाबिल हूँ।" हर वसन्त पञ्चमी को वे सरस्वती का पूजन बड़े धूमधाम से करते और मूर्ति के सामने तीन रात गाने-बजाने का जल्सा करते, जिसमें भारत के कोने-कोने से कलाविद् आकर संगत करते।

इतनी प्रसिद्धि और मनमोहक सितार बजाने की योग्यता रखते हुए भी लियाक़त ने कभी अपने इस इल्म से एक पैसा न कमाया था। उन्होंने कभी किसी को सितार सिखाकर या किसी के यहाँ सितार बजाने जाकर एक पैसा न लिया था। अपनी रोज़ी वे दूसरी प्रकार चलाते थे। सितार बजाने के साथ ही वे सितार बनाने में भी बड़े निपुण थे और सितार के बाजे बेचकर ही वे अपना पेट पालते थे।

उधर शराफ़त बिना एक नियत रक़म लिए हुए किसी के यहाँ सरोद बजाने न जाते और न बिना पूरी फ़ीस लिए किसी चिड़िया के पूत को सरोद पर उँगली रखना सिखाते।

× × ×

लखनऊ के बाबू रामेश्वरीदयाल इञ्जीनियर कृष्ण के जितने भक्त थे, उतने ही गायन-वादन के कनरसिया। इस साल जन्म-अष्टमी पर उन्होंने अपने इष्टदेव कृष्ण के सामने एक बहुत बड़ा जल्सा करने की सोची थी, जिसमें उन्होंने बड़ी दूर दूर के गाने-बजाने वालों को निमन्त्रण दिया था। रामपुर के दोनों कलाविद्, शराफ़तहुसेन और लियाक़त ख़ाँ, भी इसमें बुलाए गए थे। शराफ़त ने १०१) रु० और सेकेंड क्लास फ़ेयर लेकर आना

मंज़ूर किया था और लियाक़त ने मंज़ूर किया था अपने टिकट से आना।

इस बड़े जल्से की प्रतीक्षा लोग बड़ी उत्सुकता से कर रहे थे कि राम-राम करके वह दिन आ ही पहुँचा। एक बड़े भारी कमरे में महफ़िल जमी। ऊँचे पुलपिट पर सब कलाविद् आकर बैठ गए; पर शराफ़त अभी लापता थे। दो बार बुलौवा भेजा गया पर—'अभी आता हूँ' का जवाब मिला और फिर नदारत। लोगों ने राय दी कि जल्सा शुरू कर दिया जाय और जल्सा शुरू हो गया।

दो एक गवैयों के बाद लियाक़त ख़ाँ की बारी आई और सरस्वती को प्रणाम करके सितार पर उन्होंने जो उँगली रक्खी तो कमाल करके दिखा दिया। बागेश्वरी की एक गत उन्होंने बजानी शुरू की और ऐसी बजाई कि लोग दीवाने हो गये। श्रोताओं को ऐसा मालूम हुआ जैसे वे प्रकृति के प्रारम्भ की कोई कथा उसी युग में पहुँच कर सुन रहे हों। जब लियाक़त ने सितार पर से उँगली उठाई तो लोग अपने-अपने स्थान पर खड़े हो होकर चिल्लाने लगे—'और' 'और'। लियाक़त ने एक मालकोष, एक बिहाग की गत और बजाई और हाथ जोड़कर छुट्टी माँगी; तब कहीं ढाई घण्टे-बाद जनता ने उन्हें उठने दिया।

शराफ़त इस बीच में आ गये थे और यह देख कर कि जल्सा बिना उनके पहुँचे ही शुरू कर दिया गया है आगबबूला हो रहे थे। पर रुपए ले चुके थे, इसलिये बजाने को बाध्य थे।

लियाक़त के बाद एक गवैये ने जैजैवन्ती का एक गीत गाया और फिर शराफ़त के सरोद बजाने की बारी आई।

भौंहें सिकोड़े हुए एक पीलू की गत उन्होंने—'मैं उस पार चलूँगी आली, गहरी नाव नदी मतवाली' के वज़न पर शुरू की और उसे ख़ूब निभाया। तबलिया भी बड़ा सधा हुआ था, क़रीब चालीस मिनट सरोद बजा पर एक एक मात्रा ठीक उतरी। जब शराफ़त बजाना रोककर उठने लगे तो लोगों ने इसी गत को थोड़ी देर और बजाने की दरख़्वास्त की, पर वे अपनी जगह की तरफ़ बढ़ते ही चले गये। दो औरतों की तरफ़ से उसी गत को थोड़ी देर और बजाने की फ़रमाइश की गई, पर उन्होंने न माना और अपनी जगह पर जाकर बैठ गये। लियाक़त ने कहा—'मियाँ बजा दो, औरतों की दरख़्वास्त तो मंज़ूर कर लो।'

इस पर शराफ़तहुसेन बिगड़ उठे—'जी, 'बजा दो' कह देना कितना आसान है। यह सितार नहीं है यह है सरोद, इसमें मेहनत पड़ती है। मज़दूर थोड़े ही हैं; जो अपनी तबीयत में आयेगा करेंगे।'

लियाक़त के दिल में शराफ़त की यह कड़ी बोली तीर की तरह चुभी। उन्होंने सितार की खूँटियाँ कसीं, सरस्वती को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और सितार पर सरोद बजाते हुए पीलू की वही गत छेड़ दी। लोग भूल गये कि बजानेवाले शराफ़त नहीं हैं लियाक़त हैं और सरोद की गत सरोद पर नहीं बज रही बल्कि सितार पर बज रही है।

जब लियाक़त ने बजाना बन्द किया तो लोगों को मालूम हुआ कि वे कहाँ बैठे हैं। बड़े-बड़े जाति-अभिमानी ब्राह्मण जो कला के पारखी और पुजारी थे, लियाक़त के पैरों से लिपट गये। वास्तविक कला ने उन्हें एक उच्च स्थान पर पहुँचा दिया था, जहाँ भेदभाव का नाम न था।

जब लियाक़त अपनी जगह पर बैठने लगे तो 'हिज़ मास्टर्स वायस' कम्पनी के एक एजेण्ट ने, जो वहाँ पर बैठा हुआ था, सितार पर सरोद की इस गत को रिकार्ड करा लेने की ख़्वाहिश ज़ाहिर की। लियाक़त ने सहज स्वाभव से मंज़ूरी दे दी और अपनी जगह पर बैठ गये।

फिर भी लियाक़त के मन को शराफ़त के वे शब्द वेधे डालते थे और शराफ़त—वह तो जल भुनकर कलावत्तू हो रहे थे। पीलू की यह गत उनके ख़ानदान में जाने कब से बजती चली आ रही थी और उन्हें इसके अच्छे ढंग से बजाने का अभिमान था; पर आज वह सब जैसे मिट्टी में मिल गया हो। वे मन में कहते थे—'ऐसा मालूम होता था जैसे कम्बख़्त ने जादू से सितार को सरोद बना दिया हो और मेरा हाथ लेकर पीलू बजाने लगा हो। कहीं एक स्वर एक मीड़ भी तो उसने अलग की न लगाई। बला की याददाश्त है और ग़ज़ब का हाथ।' यह सब होते हुए भी उन्होंने अपने चेहरे पर झेंप की शिकन न आने दी और वैसे ही बैठे रहे।

× × ×

सितार पर सरोद की गत का वह रिकार्ड जब निकला तो लोग अवाक् रह गये। लेकिन यह क्या, रिकार्ड के आख़िर में पुराने गवैये जैसे अपना नाम लिया करते थे, लियाक़त ने रिकार्ड में कहा—'सितार पर सरोद बजानेवाले शराफ़त का बाप, लियाक़त।'

सुनाने वालों में वावबैला मच गया और शराफ़त—उन्होंने तो जब यह रिकार्ड सुना तो गुस्से से पागल हो गये। अपना रिकार्ड और रामपुर की उस छोटी सी दूकान में जितने भी वैसे रिकार्ड मिल सकते थे, ख़रीदकर उन्होंने चूर-चूरकर डाले और दूसरे ही दिन कोर्ट में लियाक़त पर इज़्ज़त-हतक का दावा कर दिया।

× × ×

इजलास में मुक़द्दमा पेश हुआ। हज़ारों की तादाद में लोग इस विचित्र मुक़द्दमे की कार्यवाही सुनने को पहुँचे। शराफ़त हुसेन के वकील ने लियाक़त से जिरह की कि 'आपने अपने रिकार्ड के आख़िर में 'शराफ़त के बाप लियाक़त' क्यों कहा ?'

दर्शकों में बहुत से जो इस मामले को जानते थे, मुँह में रूमाल ठूँस-ठूँसकर हँसने लगे और शराफ़त गुस्से में होठ चबाने लगे। पर लियाक़त बहुत गम्भीर थे। उन्होंने कहा—'जनाबमन, मेरे एक लड़का हुआ था, जो बहुत छोटी उम्र में मर गया, उसका नाम था शराफ़त। उसी की याददाश्त में

यह रिकार्ड मैंने निकलवाया, पता नहीं इसका लोगों ने इतना बवाल क्यों बना दिया।'

शराफ़त ने अपनी बात के सबूत में म्युनिसिपैलिटी के पैदायश और मौत के दो पुराने रजिस्टर पेश करवाये, जिनमें शराफ़त वल्द लियाक़त नाम के एक लड़के की पैदायश और मौत का ज़िक्र था। यह सबूत उन्होंने किस प्रकार हासिल कर लिया, म्युनिसिपैलिटी के क्लर्कों से कुछ गम खाकर या किसी और तरह, यह लोग न जान पाये; क्योंकि शराफ़त के लड़का कभी हुआ ही न था। फिर भी मुक़द्दमा इसी बिनह पर ख़ारिज हो गया; लेकिन जज ने उस रिकार्ड के दूसरी बार निकलने की मनाही कर दी।

× × ×

शराफ़त और लियाक़त अब भी हैं, पर जिस जल्से में सितारिये लियाक़त शामिल होते हैं, शराफ़त सरोद बजाने नहीं जाते।

विजित

(१)

ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों की बात है। महाराज यशोधर्मपाल और देवपाल के से यशस्वी सम्राटों के वंशजों का साम्राज्य, कन्नौज के गहदवल और राधाप्रान्त के सेन शासकों के प्रभाव से, सिकुड़कर छोटा हो गया था। कर्नाटकुमार के प्रतिनिधि, सामन्तसेन के पौत्र, विजयसेन ने परतंत्रता का सारा बन्धन तोड़ दिया था और वे राधाप्रान्त के पूर्णतः अधिकारी बनकर अपने हाथ-पैर चारों तरफ फैला रहे थे। महाराज विजयसेन के निकटवर्ती प्रतिद्वन्दियों में पालबंश के अन्तिम प्रसिद्ध सम्राट रामपाल के उत्तराधिकारी जयपाल और श्रीपाल ही थे।

जयपाल और श्रीपाल सहोदर थे। ज्येष्ठ होने के कारण जयपाल ही पालवंश के जर्जर सिंहासन पर विराजित थे, और अनुज श्रीपाल थे उनके सेनापति और सहायक। जयपाल थे भगवान् बुद्ध के सच्चे भक्त, धर्म-प्रिय और संतोषी। इसके ठीक प्रतिकूल श्रीपाल थे बाँके सैनिक, युद्धप्रिय और यश व साम्राज्य के उत्कट अभिलाषी। यह उन्हीं की तलवार का ज़ोर था कि विजयसेन के शक्तिशाली हाथों. पाल-शासन अब तक पूर्णतया नष्ट नहीं हो पाया था।

महाराज विजयसेन की शक्ति-सम्पन्नता और उनका ऐश्वर्य जिस प्रकार दूर दूर फैला हुआ था वैसे ही उनकी पुत्री कुमारी नीहार की सौन्दर्य-चर्चा भी बड़ी-बड़ी दूर तक व्याप्त थी। जुही की कली-सा रूप-लावण्य और कोमलता पाकर नीहार लौकिक दृष्टि से अब विवाह के योग्य हो गयी है, यह महाराज विजयसेन को कुछ दिन हुए सूझने लगा था और वे उसके स्वयंवर के विषय में सोच भी रहे थे, परन्तु जिस समय विजयसेन नीहार की सूर्य-सी दीप्त सौन्दर्य-राशि को देखते तो मन का एक विचार उठ कर उनके प्रभावशाली मुख पर एक क्रूर मुस्कराहट ला देता था। महाराज विजयसेन के पास एक सैनिक था—भीमकाय और डरावनी। उसकी तलवार की क्रूरता सारे उत्तर भारत में प्रसिद्ध थी। न जाने कितने युद्धों में उसने भाग लिया था और न जाने कितने द्वन्दों में उसकी बिजली-सी तड़पती हुयी तलवार प्रति-द्वन्दियों की कोखों में घुस चुकी थी। तो विजयसेन सोचते थे, "यदि मैं सर्वत्र घोषित कर दूँ कि द्वन्द युद्ध में शूरसेन को परास्त करनेवाला प्रथम व्यक्ति ही नीहार का पति होगा, तो नीहार के सौन्दर्य के लिये उन्मत्त राजकुमारों को शूरसेन की तलवार की भेंट चढ़ाकर शत्रुओं को मैं शीघ्र ही शक्तिहीन कर सकूँगा।"

मन्त्री रामदेव को बुलाकर विजयसेन ने अपना विचार उस पर प्रकट किया और क्रूर प्रकृति मन्त्री ने महाराज की दूरदर्शिता की प्रशंसा करते हुये इस विचार को बहुत ही पसन्द किया।

पुष्टि पाकर यह विचार कार्य-रूप में परिणत किया जाने लगा। स्वयंवर की तिथि नियत हो गई और चारों ओर राज्यों में स्वयंवर का निमन्त्रण भेजा जाने लगा। आमन्त्रितों में शत्रुराज्य ही अधिक थे।

(२)

राजधानी में स्वयंवर की बड़ी धूमधाम से तैयारी थी और निमन्त्रण बड़ा ही आग्रहपूर्ण था। कन्नौज और पाल राज्य में विजयसेन का दूत बहुत देर तक ठहरा और स्वयंवर में आने का बहुत आग्रह करता था। कन्नौज के राजकुमार ने आने का वचन भी दिया, परन्तु श्रीपाल के मुख्य सेवक ने आकर कह दिया "युवराज श्रीपालजी अस्वस्थ हैं, वे स्वयंवर में न आ सकेंगे"।

महाराज विजयसेन यह समाचार सुन कर हाथ मलते रह गये। श्रीपाल से, जिसके कारण वे पालराज्य का शेष भाग अपने राज्य में न मिला सकते थे, वे बहुत शत्रु-भाव रखते थे। परन्तु कन्नौज इत्यादि का समाचार सुन कर उन्हें संतोष था।

स्वयंवर की तिथि निकट आ पहुँची। सेन सम्राट् की वैभव-शाली राजधानी साज-सामान से चमक उठी। आमंत्रितों के लिये बड़ी ही आराम की जगह ढूँढी गई, जहाँ उनके लिये सब बातों की सुविधा थी।

आमंत्रितों में सबसे पहिले आने वाला व्यक्ति एक गौरवर्ण, छरहरे बदन का युवक था। अवस्था २४ वर्ष से अधिक प्रतीत

न होती थी। मुख पर सौम्य था और नेत्र बड़े ही प्रभावशाली थे। पूछने पर मालूम हुआ कि वे 'सुमेरु-छत्रिय* थे। दूसरे दिन गौड़, तिरहुत, नैपाल, कामरूप, और कलिंग से स्वयंवर के लिये लोग आने लगे।

महाराज विजयसेन अपने जाल में फँसे हुये इन राजकुमारों को देखते और मन ही मन मुस्कराते थे, परन्तु निकट ही जमे हुये श्रीपाल का जब उन्हें ध्यान आता तो हृदय कचोट उठता। महाराज के गुप्तचर श्रीपाल के महल के आस-पास चक्कर लगाते रहते थे, परंतु श्रीपाल के विषय में वे यह पता न लगा सके कि वे अस्वस्थ हैं, या कैसे हैं या कहाँ हैं।

नियत तिथि को रंगशाला दर्शकों और योद्धाओं से खचा-खच भर गयी। समय होते ही शूरसेन ने प्रवेश किया और रंगशाला में जाकर ललकारा। छत्रियों का खून खौल उठा, भौंहें चढ़ गयीं। कवच से बदन ढके हुए एक अत्यन्त सुन्दर युवक रंगशाला में आया। तलवार-युद्ध आरम्भ हुआ, युवक ने बड़ी सफ़ाई दिखलाई, परन्तु थोड़ी देर में ही शूरसेन उस युवक से भारी पड़ने लगा, और आधी घड़ी बीतते बीतते युवक धराशायी हो गया। दर्शकों का उत्साह ठंढा पड़ गया। इसी प्रकार एक आया, दूसरा आया, तीसरा, फिर चौथा परन्तु सबकी वही गति हुई।

---

* सुमेरु चत्रिय सिंध-प्रांत में राज्य करते थे

सब लोग देखने में मग्न थे, परन्तु सुमेर से आनेवाला राजकुमार मुस्करा रहा था, और कभी-कभी उपेक्षा-भाव से शूरसेन की ओर देख लेता था। उसे मानो शूरसेन की इस शक्ति को देखकर कुछ आश्चर्य न होता था। महाराज विजयसेन भी द्वन्द कुछ विशेष ध्यान से न देखते थे क्योंकि किसी के भी रंगशाला में उतरने पर उन्हें शूरसेन की विजय के विषय में आशंका न होती थी। हाँ, जब कोई प्रतिद्वंदी पृथ्वी पर गिरता था तो वह शूरसेन की ओर देखकर एक कृपा-कटाक्ष करते थे। वह भी क्रूरता से मुस्करा कर दूसरे प्रतिद्वन्दी का आह्वान करता। योद्धाओं में बैठे हुये सुमेर राजकुमार से महाराज की कभी-कभी दृष्टि मिल जाती थी और उसकी आँखों में जो लापरवाही महाराज को दिखलाई पड़ती थी उससे उन्हें आश्चर्य होता था।

कन्नौज के बलशाली और पराक्रमी राजकुमार से जनता को बहुत बड़ी आशायें थीं, परन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी राजकुमार शूरसेन से पेश न पा सका, और अन्त में शूरसेन की तलवार कवच को भेदती हुई राजकुमार की कोख में घुस गयी। जनता में त्राहि त्राहि मच गई। लोगों को निर्दय शूरसेन से तनिक भी सहानुभूति न थी, क्योंकि उसकी विजय वे सदा से देखते चले आये थे और वे अब उसकी पराजय देखने के इच्छुक थे, जिसकी उन्हें कोई संभावना दिखाई न देती थी।

रंगशाला का तलवार-युद्ध उस समय के लिये समाप्त हो गया। दर्शकगण राजकुमारों की मृत्यु पर दुःख प्रकट करते हुए

चले आते थे। कोई कहता—'कन्नौज का राजकुमार कैसा सुन्दर था।' कोई कहता—'इस शूरसेन को तो देखो, एक के बाद एक छः प्रतिद्वन्दियों से बराबर लड़ा और जीतता ही चला गया। कैसा कौशल है उसमें, कि कोई उसके सामने टिक ही नहीं पाता।'

तीसरे पहर से ही रंगशाला में जनता शूरसेन की तलवार द्वारा बलि जाने वाले युवकों को देखने आयी थी। किसी के मुख पर उत्साह के चिह्न न दिखाई पड़ते। रंगशाला में शूरसेन के प्रवेश करते ही इस बार इसी सुमेर राजकुमार ने हाथ में तलवार लिये प्रवेश किया। राजकुमार की तलवार यद्यपि शूरसेन की तलवार से सुन्दर और क़ीमती न प्रतीत होती थी, परन्तु वह दूर से ही घाटदार और मज़बूत मालूम होती थी। रंगशाला में उतरते ही हज़ारों दर्शकों ने उसकी ओर दया की दृष्टि से देखा।

तलवार-युद्ध आरम्भ हुआ—दोनों ओर से वार होने लगे। राजकुमार ने चाल बदलते हुए चार-पाँच हाथ ऐसी सफ़ाई से फेंके कि दर्शकों के हृदय में कुछ आशा और उत्साह का संचार हो आया। महाराज विजयसेन और मन्त्री रामदेव भी अब युद्ध ध्यान-पूर्वक देखने लगे।

शूरसेन ने अपने छल-बल लगाने शुरू किये, परन्तु राजकुमार की फुर्ती के कारण उससे कुछ न हो पाया। शूरसेन के एक वार को ढाल पर लेकर राजकुमार ने एक ऐसा हाथ मारा कि शूरसेन के कन्धे में गहरा घाव हो गया। महाराज के होश

गुम हुए जा रहे थे। दर्शक शूरसेन की घबड़ाहट का आनन्द ले रहे थे। इसी समय महाराज और मंत्री रंगशाला से उठकर एक गुप्त स्थान में आये। एक गुप्तचर वहाँ खड़ा था। उसने कहा—'महाराज, मेरे पास पक्का सबूत है कि यह जो युद्ध कर रहे हैं, वही श्रीपाल हैं।'

महाराज की आँतें मुँह को आ गयीं। घबड़ाहट में वे बोले—"कैसे जाना कि यही श्रीपाल हैं?"

गुप्तचर ने कहा—"महाराज, मैंने एक वहीं का आदमी मिला लिया है, उसीने इन्हें पहचाना।"

दूत को वहीं छोड़ महाराज मंत्री से बोले—"यह तो युद्ध में जीता जा रहा है। तो क्या मेरी कन्या पालवंश में ब्याही जायगी। मंत्रीजी, बड़ा ग़ज़ब हो जायगा। इसका कुछ प्रबन्ध कीजिये।"

मन्त्री 'बहुत अच्छा!' कहकर चला गया।

श्रीपाल के ज़ोर के वार से शूरसेन गिरा ही था कि चारों ओर से आठ सैनिकों ने श्रीपाल पर आक्रमण कर दिया। लोग बिगड़ उठे—"यह अन्याय है।" मन्त्री ने कड़ककर कहा—"आप लोग नहीं जानते इस मनुष्य ने हमें धोखा दिया है। हम उसका बदला लेते हैं। आप लोगों का इसमें कोई बीच नहीं है।"

लोग मन्त्री के दुष्ट स्वभाव से परिचित थे, वे उत्सुकता से श्रीपाल की ओर देख रहे थे। श्रीपाल ने तलवार घुमाई, दो

सैनिक गिर पड़े। एक ओर ख़ाली स्थान देखकर वह द्वार की ओर बढ़ने लगे, जहाँ उसे एक घोड़ा खड़ा हुआ दिखाई दे रहा था। यह घोड़ा उसी गुप्तचर का था, जो थोड़ी देर पहिले वहाँ आया था।

फाटक के पास पहुँचकर श्रीपाल घोड़े की पीठ पर उचक कर जा बैठे और चिल्लाकर बोले—"कुमारी नीहार अब धर्मानुसार मेरी हो चुकी, और मैं उसे ले जाकर ही छोड़ूँगा।"

यह कहकर उन्होंने घोड़ा दौड़ा दिया। मंत्री जी 'हाँ! हाँ!!' करते रहे। लोगों ने घोड़े दौड़ाये परन्तु उन्हें कोई न पा सका।

महाराज से हँसते हुये रामदेव ने कहा—"वह मूर्ख प्रतिज्ञा कर गया है कि मैं राजकुमारी को ले जाकर ही मानूँगा।" यह कहकर वह और ज़ोर से हँसा।

महाराज ने गम्भीरता से उत्तर दिया—"अरे, राजकुमारी को तो वह क्या खाकर ले जायगा। लेकिन क्रोध जो तुम्हारे ऊपर आता है कि तुमने उसे जीवित चले जाने दिया।"

मन्त्री कुछ न बोला। महाराज मन में मित्र राज्यों के राजकुमारों पर दृष्टि दौड़ाने लगे कि कुमारी को किसे सौंपें।

(३)

सन्ध्या समय कुमारी नीहार अपने सौन्दर्य से उद्यान की शोभा को द्विगुणित कर रही थीं। उनकी अभिन्न-हृदय सखी उनके साथ थी। दोनों अपने संगमरमर के से ढले हुये पैरों को

उद्यान के सरोवर में डाले हुए बैठी थीं। सरोवर का स्थिर जल मानों नीहार के चरण-कमलों में लिपटे रहने में ही अपना सौभाग्य समझता था। इसी कारण किंचित् हिलता-डुलता न था।

जल की ओर दृष्टि किये हुये ही नीहार की सखी बोली—"कुमारी, तूने सुना श्रीपाल क्या कह गये हैं कि वह तुझे ले जाकर ही मानेंगे।"

राजकुमारी ने गम्भीरता से कहा—"रंगशाला में तू क्या कहीं और बैठी थी?"

सहेली ने पूछा—"तो तुम जाओगी उनके साथ?"

कुमारी ने उसे ठठोला—"तेरी क्या राय है? मुझे जाना चाहिये या नहीं।"

सहेली—"मेरी भी क्या राय! फिर वह यहाँ आ भी कैसे सकते हैं?"

राजकुमारी—"नहीं वह ज़रूर आवेंगे और सच पूछो तो मैं उनकी हो भी चुकी और इसीलिये जाना भी चाहती हूँ।"

सहेली—"और महाराज......?"

कुमारी—"यह उनका अन्याय है। यह फल नहीं सकता।"

(४)

कृष्ण पक्ष की अँधेरी रात्रि थी, सन-सन हवा चल रही थी और तारे आकाश से झाँक रहे थे। अंतःपुर के एक कमरे में महाराज और महारानी नीहार के विवाह के विषय में परामर्श

कर रहे थे। दूसरी ओर एक व्यक्ति दबे पाँव छिपता हुआ कुमारी नीहार के कमरे की ओर अग्रसर हो रहा था। कमरे में नीलम का एक दीपक धीमी ज्योति से जल रहा था, परन्तु शय्या पर पड़ी कुमारी नीहार का हृदय उससे अधिक जल रहा था।

इसी समय आहट से राजकुमारी चौंकी—"कौन है इस समय?"

श्रीपाल ने आकर कहा—"पहिचानो"। यह कहते हुये दीपक की बत्ती उकसा दी।

राजकुमारी ने कहा—"अच्छा, आप आ गये।"

"क्या चलोगी नहीं?"

"ऐसा क्यों कहते हैं! पिता ने यदि क्षात्रधर्म छोड़ दिया तो मैं भी छोड़ दूँगी? जब तुमने युद्ध में मुझे जीत लिया तो मैं तुम्हारी हो चुकी। चलो मैं तैयार हूँ।"

श्रीपाल ने कुमारी का हाथ पकड़ लिया और जिस ओर से वह आये थे, उसी ओर दोनों चल पड़े। चहारदीवारी से कमन्द लटक रही थी। उसके सहारे दोनों नीचे पहुँचे, जहाँ श्रीपाल का घोड़ा बँधा था, घोड़े पर चढ़ कर श्रीपाल और राजकुमारी चल पड़े।

इतने में महल में हलचल मच गई, प्रहरी इधर-उधर दौड़ने लगे। दासी ने रो-रोकर कहा—"राजकुमारी कमरे में नहीं है।" इधर-उधर देखने पर कमन्द लटकी हुई मिली।

महाराज विजयसेन ने कपाल ठोक लिया, फिर क्रोध, दुःख और घबड़ाहट से भरा हुआ हृदय लिये सैनिकों के साथ वे भी ढूँढ़ने निकले।

सरिता-तट पर जिस समय श्रीपाल और नीहार पहुँचे तो शर्माता हुआ चन्द्रमा आकाश पर दिखलाई पड़ने लगा था। वायु का वेग बढ़ता हुआ उसे आँधी में परिवर्तित कर रहा था। नदी में ज़ोर-ज़ोर से उठती हुई लहरों का शब्द दूर से सुनाई दे रहा था। श्रीपाल के आते ही नाव पर पतवार ठीक करते हुये युवक नाविक ने कहा—"क्यों कुमार, सब ठीक है?"

"हाँ, चलो!" श्रीपाल राजकुमारी सहित नाव पर जा बैठे। पतवार चलाते हुए नाविक ने कहा—"आँधी बड़े ज़ोर की आ रही है।"

रात्रि की नीरवता, आँधी की सन-सन से, पानी के कल-कल से, डाड़ों की छपाक-छपाक से और कुछ दूर पर दौड़ते आये हुए घोड़ों की टापों के शब्द से भंग हो रही थी। नदी का बीच कुछ ही गज़ की दूरी पर था कि लहर की एक उछाल ने नाव के यात्रियों को बिलकुल भिगो दिया। कुमारी नीहार भय से श्रीपाल से और भी सट गई।

आँधी का वेग नाव को हिलाने-डुलाने लगा। इसी समय महाराज विजयसेन ने नदी में जाती हुई नाव में श्रीपाल और कुमारी नीहार को पहचाना। उन्होंने देखा श्रीपाल की विशाल बाहु नीहार की कटि में पड़ी है, और नीहार उससे स्नेह में

सनी सटी है। उन्होंने यह भी देखा कि आँधी के वेग के कारण नाव अब उलटती है, अब उलटती है। महाराज विजयसेन के हृदय के कोमलतर विभाग ने उनके मुख से यह शब्द बरबस निकाले—'तुम लोग लौट आओ, बड़ी आँधी है, बड़ी हवा है। लौट आओ, मैं तुम्हारी इच्छा की पूर्ति कर दूँगा। लौट आओ······।'

आँधी के एक झोंके ने उनकी नाव को उलट दिया और वे दोनों महाराज विजयसेन के शब्दों को कदाचित् सुन भी न सके।

कर्तव्य

(१)

यह घटना आज से लगभग १५०० वर्ष पूर्व की है। एक दिन संध्या के समय, जब कि आकाश में मेघ छाये हुए थे, मन्दसौर नामक स्थान में नदी के निकटवर्ती मार्ग से एक बालिका एक सुन्दर घोड़े पर बैठी चली जा रही थी। घोड़ा सुन्दर व सुसज्जित था, तथा बड़ी सुन्दर चाल से चला जा रहा था। इसी समय निकट की झाड़ी से बड़े ज़ोर से गुर्राहट सुनाई दी। घोड़ा आवाज़ सुनकर ठिठका, बालिका भी भयभीत होकर देखने लगी। उसने लगभग ५० गज़ की दूरी पर से एक सिंह को अपने पंजे समेटते हुए देखा। सिंह आक्रमण की तैयारी कर रहा था। बालिका चिल्ला पड़ी—'हा भगवान्! सिंह', 'कोई रक्षा करो'। उसके ये शब्द शिवालय के निकट बैठे एक युवक ने सुने। वह धनुष-बाण लिये हुए शब्द के सहारे दौड़ा। स्थान पर आकर उसने देखा—एक बालिका पृथ्वी पर मूर्च्छित पड़ी है, उसके निकट एक सुन्दर घोड़ा सहमा हुआ खड़ा है और एक सिंह उन पर घात लगाये है। उसने धनुष पर बाण चढ़ाया और निशाना बाँधकर खड़ा हुआ, सिंह उछला, बाण छूटा, तथा सिंह उलट कर पृथ्वी पर जा गिरा। सिंह के कराहने की

आवाज़ ने बालिका की मूर्च्छा तोड़ दी। उसने देखा कि एक प्रतिभाशाली व बलिष्ठ युवक उसके फँसे हुए पैरों को ज़मीन पर पड़ी हुई रकाब से निकाल रहा है और निकट ही सिंह मरा पड़ा है। वह विह्वल होकर युवक से लिपट गई, तथा गद्गद कंठ से बोली, 'भैया, तुमने मेरी रक्षा की है।'

युवक हृदय में विचार रहा था—अहा! मैंने कैसी सुन्दर व सुशील बहन पाई है। उसने पूछा—'बहन, तुम कहाँ रहती हो? चलो, तुम्हें घर पहुँचा दूँ।' बालिका ने कहा, मैं महाराज यशोवर्मन् के अमात्य भूरिवसु की कन्या सारन्धा हूँ। भाई, तुमने अपना परिचय नहीं दिया।

युवक बोला—"मैं क्षत्रिय हूँ, तथा सैनिक वृत्ति की तलाश में घूमता हूँ। मेरा नाम अमरसिंह है; इससे अधिक मेरा परिचय कुछ नहीं है।"

बालिका प्रसन्न होकर बोली—'चलो हमारे पिता तुम्हें सेना में स्थान देंगे।'

बालिका अपने घोड़े पर सवार हुई। युवक ने अपना धनुष-बाण लिया, और वे दोनों चल पड़े। वे एक सुन्दर भवन के सामने पहुँचे। बालिका ने कहा—'मैं यहीं रहती हूँ।' अमात्य भवन के सम्मुखवर्ती सरोवर के निकट शिला पर बैठे कुछ वार्तालाप कर रहे थे। सारन्धा घोड़े से उतरकर अमात्य से लिपट गई और बोली—'आज तो सिंह ने खा लिया होता पिताजी!'

अमात्य चौंक पड़े, 'अकेली गई थी क्या ? बची कैसे ?'

सारन्धा गई और दूर पर संकुचित खड़े हुए अमर को पकड़ लाई। सब लोगों की दृष्टि अमर पर थी।

'इन्हीं ने बचाया पिताजी।'

अमात्य ने दौड़कर युवक को हृदय से लगा लिया। उन्होंने पूछा—'सिंह से कैसे बचाया बेटा ?'

युवक ने संक्षेप में उत्तर दिया। उसके नेत्रों से अत्यधिक सम्मान के कारण आँसू निकल रहे थे।

सब ने पूछा—'एक ही बाण में मर गया ?'

उत्तर मिला—'हाँ।'

सब की प्रशंसापूर्ण आँखें अमर की ओर उठीं। अमात्य ने पूछा—'तुम्हारा परिचय क्या है ?'

अमर ने बताया—'मैं सैनिक वृत्ति की तलाश में हूं। मेरा नाम अमरसिंह है।'

अमात्य प्रसन्न होकर बोले—'अच्छा, तुम आज से हमारे यहाँ के बलाधिकृत्य हुए।'

(२)

सात वर्ष व्यतीत हो गये। अमात्य भूरिवसु वृद्ध हो गये हैं। अब सारा प्रबन्ध कुँअर अमरसिंह ही करते हैं। वास्तव में वे ही अमात्य हैं। लोगों की अमर में भक्ति व श्रद्धा देखकर अमात्य बहुत प्रसन्न होते हैं। जब सम्राट् यशोवर्मन् अमात्य के रुग्ण होने पर उन्हें देखने आये, तो उन्होंने सम्राट् से कहा

था—'महाराज, मैं अमर को पाकर यह भूल गया हूँ कि मैं पुत्रहीन हूँ।' महाराज भी अमर से मिलकर और उसके गुण व योग्यता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे।

गत समय में सारन्धा का विवाह अनंग देश के राजकुमार अनिरुद्धसिंह से हो चुका है। अनिरुद्धसिंह को महाराज यशोवर्मन् के यहाँ से विषयपति का पद भी प्राप्त है। वे अमरसिंह का बड़ा आदर करते हैं। जब तक सारन्धा अनंग में रहती है, वहाँ से हरकारे अमरसिंह को बुलाने आया करते हैं। अमात्य इन सब का वास्तविक प्रेम देखकर बड़े प्रसन्न होते हैं। सिर्फ़ एक बात ही ऐसी है, जिसके कारण कभी-कभी अमात्य अमर से बहुत रुष्ट हो जाया करते हैं। वह है, अमर का विवाह के लिए सदा 'नहीं' करना और विवाह-बन्धन के दोष दिखाकर उसे स्वतंत्रता नष्ट करने का एक साधन बताना। वे समझ ही नहीं पाते हैं कि अमर के लिए क्या करें।

एक दिन प्रातःकाल रुग्ण अमात्य भूरिवसु के निकट अमरसिंह तथा सारन्धा बैठे कुछ वार्तालाप कर रहे थे। दासी ने आकर ख़बर दी—'महाराज, राजधानी से दूत पत्र लेकर आया है।' कुँअर अमरसिंह उठकर बाहर आये। दूत से पत्र लेकर पढ़ा। उनके मुख पर प्रसन्नता के कुछ चिह्न आये और चले गये। उन्होंने दूत के ठहरने का प्रबन्ध कराया और पत्र लेकर अन्दर आये, जहाँ अमात्य तथा सारन्धा उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। अमरसिंह ने पत्र पढ़कर सुनाया। पत्र यह था—

जिसका यश भुजा पर खड्गरूपी लेखनी से लिखा है, जिसने हूणों को बार-बार परास्त किया, जिसने हिमालय पर्वत से लेकर समुद्र-तट तक के राजाओं को अपने वश में किया व जिसके प्रचण्ड प्रताप ने वन की शान्त ध्वनि के सदृश पृथ्वी को कभी न छोड़ा, उसी चक्रवर्ती सम्राट् यशोवर्मन् की आज्ञानुसार अमात्य भूरिवसु को यह लिखा जाता है कि वे अनंग, सौन्दर्णा इत्यादि निकटवर्ती देशों की सेना सहित हूण-सरदार मिहिरकुल से युद्ध करने के निमित्त द्वितीया शुक्लपक्ष, मास आश्विन, संवत् ५६४ तक राजधानी पहुँचकर युद्ध में सहायता दें।

अमात्य ने कहा—'अमर, इसी दूत के द्वारा सम्राट् को लिखवा दो कि अमात्य भूरिवसु रुग्ण होने के कारण युद्ध में स्वयं सम्मिलित न हो सकेंगे। कुँअर अमरसिंह नियत तिथि तक सारी सेना सहित अवश्य प्रस्तुत होंगे।'

अमर ने कहा—'पिताजी, अनंग भी समाचार भेज दें। अब समय ही कहाँ है।'

अमात्य ने खाँसते हुए उत्तर दिया, 'हाँ, जामाता अनिरुद्धसिंह को लिख दो कि सेना सहित जल्दी आ जायँ, दर्शन देकर युद्ध में जायँ तो अच्छा है। क्या मालूम मैं लौटने तक जीवित रहूँ या नहीं।'

अमर ने लेखक को बुलाकर पत्र लिखवाये। दूसरा पत्र लिखवाते समय उसके नेत्रों से आँसू गिर रहे थे। सारन्धा बैठी सोच रही थी—अपना भविष्य।

(३)

समय व्यतीत होते देर नहीं लगती। तिथि आ पहुँची, चारों ओर युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं। रात-दिन राजधानी की ओर जाती हुई सेनाओं के बाजे सुनाई पड़ते थे। अमात्य के स्थान मन्दसौर में बड़ी चहल-पहल थी। बाहर से आई हुई सेनाओं के डेरे नगर के चतुर्दिक् पड़े हुए थे। कहीं घोड़ों को साज़ पहनाये जा रहे थे, कहीं तेग़ व भाले साफ़ किये जा रहे थे, कहीं साफ़ों में कलग़ियाँ लगाई जा रही थीं व कहीं रण-वाद्य ठीक किये जा रहे थे। कुँअर अमरसिंह सब की आवश्यकताओं को पूछते व उन्हें रण के विषय में आवश्यक बातें बताते फिरते थे।

सन्ध्या के समय अमरसिंह वाटिका में बैठे सारन्धा के पति अनिरुद्ध की प्रतीक्षा कर रहे थे कि उन्होंने सारन्धा को अपनी ओर आते हुए देखा। सारन्धा आई और अमर की गोद में मुँह छिपा कर रोने लगी। अमर के नेत्र भी अश्रुपूर्ण हो गये। वह सारन्धा के सिर पर हाथ फेरता हुआ बोला—'क्या है सारन!'

सारन्धा ने सिसकते हुए कहा—'भैया अमर, मैं तुमसे अपना सुहाग माँगती हूँ,' यह कहते-कहते उसने अपना अंचल फैलाया—'भैया जैसी तुमने मेरी रक्षा की थी, वैसी मेरे सिन्दूर की भी करना।'

अमर ने कहा—'सारन, जब तक तुम्हारे पति के साथ अमर है, उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।'

सारन्धा को विश्वास हो गया। उसने अमर की ओर कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से देखा तथा आँसू पोंछती हुई चली गई। अमर पूर्ववत् बैठा रहा।

प्रातःकाल हुआ, युद्ध के बाजे बज रहे थे, सारे सैनिक अमात्य के भवन के सम्मुख एकत्रित थे। प्रस्थान में थोड़ी ही देर थी। अमात्य भूरिवसु शय्या पर पड़े-पड़े ही अमरसिंह तथा अनिरुद्ध को युद्ध के विषय में अन्तिम तथा अनिवार्य चिताव-नियाँ दे रहे थे। अमात्य ने कहा—पुत्र अमर, तुम बुद्धिमान हो, अनिरुद्धसिंह का ध्यान रखना।'

अमर ने उत्तर दिया—'पिताजी, आप निःशंक रहें।'

इतने में सारन्धा हाथ में थाल लिये तिलक करने आई। उसने अनिरुद्ध के तिलक किया; उसके हाथ काँप रहे थे, मुख लाल हो रहा था तथा नेत्र भरे हुए थे। वह अमर के तिलक करने आई, उसने रोली लेकर अमर के मस्तक की ओर हाथ बढ़ाया। एक बूँद आँसू का अमर के चरण पर आ गिरा। वह तिलक कर चुकी थी। अमर ने कहा—'बहन सारन, विश्वास नहीं होता क्या? मैं कह चुका, अनिरुद्ध का बाल भी बाँका न हो पावेगा।'

अमर ने सारन्धा का मस्तक सूँघा और अनिरुद्ध ने विदा माँगी। इसके पश्चात् दोनों ने अमात्य को प्रणाम किया तथा वे भवन से निकलकर सैनिकों के सम्मुख आ गये। बिगुल बजा व सेना ने प्रस्थान कर दिया।

(४)

युद्ध-भूमि में सिन्धु नदी के दक्षिण-तट पर महाराज यशोवर्मन् की सेना का पड़ाव पड़ा। हूण लोग नदी के दूसरी ओर पड़ाव डाले हुए थे। महाराज रात्रि में बैठे अपने तम्बू में सरदारों से सलाह ले रहे थे कि बाहर से मारकाट की आवाज़ सुनाई दी। सब लोग बाहर निकल आये। हूणों ने रात्रि में छापा मारा था तथा वे चारों ओर फैल रहे थे। बिगुल बजा, अमर ने अपने सवार एकत्रित कर लिये तथा बड़ी वीरतापूर्वक वे शत्रुओं को खदेड़ने लगे। इसी समय उन्होंने देखा कि अनिरुद्ध वीरतापूर्वक हूणों में घुसे बड़ी निर्भीकता से युद्ध कर रहे थे। अमर चौंक पड़ा। उसने कहा—'अनिरुद्ध, सब फ़ौज सामने ही फैली है। अगर कहीं हूण-सवारों ने चक्कर काटकर पीछे से तम्बुओं पर आक्रमण कर दिया तो महाराज के प्राण संकट में पड़ जायँगे। जाओ, तुम पीछे से तम्बुओं की रक्षा करो।' अनिरुद्ध ने बड़ी मुश्किल से माना और वे कुछ सवारों सहित तम्बुओं के पिछले भाग की ओर चले गये। वे समझ रहे थे कि अमर ने मुझे युद्ध से बचाने के लिए यह सब किया है। उन्हें वहाँ खड़े हुए लगभग दो घड़ी बीती होगी कि 'हर-हर महादेव', 'जय माता काली' का शोर हुआ तथा पाँच हज़ार हूण या तो पड़े तड़प रहे थे या नदी की ओर भागते हुए दिखाई दे रहे थे। महाराज शोर सुनकर तम्बू के बाहर आये। देखा, पीछे अनिरुद्ध खड़ा था। महाराज ने प्रश्न किया—'युवक,

वहाँ खड़े क्या कर रहे हो? युद्ध करने नहीं गये?' इतने में अमरसिंह ने आकर प्रणाम किया। वह बोला—'महाराज, हूणों को तट तक खदेड़ आया हूँ।'

महाराज ने अमर को हृदय से लगा लिया। वे बोले—'अमर, हमें तुम-से ही युवकों की आवश्यकता है।' यह कहते-कहते उन्होंने अनिरुद्ध की ओर घृणा-मिश्रित दृष्टि से देखा। अमर ने कहा—'महाराज, मैंने ही इन्हें तम्बुओं की रक्षा के लिए इधर भेज दिया था, नहीं तो ये तो बहुत आगे बढ़ गये थे। अमरसिंह के शब्दों ने महाराज की घृणा को सामान्य रूप में परिवर्तित कर दिया।

इसके पश्चात् सब सरदार महाराज के डेरे में सलाह करने के लिए फिर बुलाये गये कि प्रातःकाल होते ही हूणों पर किस प्रकार आक्रमण किया जाय।

महाराज ने कहा—'प्रातःकाल होते ही अनिरुद्धसिंह और सरदारों सहित सामने से नदी पारकर आक्रमण करें तथा यहाँ से तीन मील की दूरी पर जो पुल है, उसे पारकर कुँअर अमरसिंह सहित पीछे से चक्कर काटकर आक्रमण करें; क्योंकि अमरसिंहजी के सवार सामने न रुक सकेंगे, वे बहुत थक गये हैं तथा अनिरुद्धसिंहजी के सैनिक अभी ताज़े हैं। वे यह कार्य सरलतापूर्वक कर लेंगे।'

अनिरुद्ध ने उठकर महाराज के प्रस्ताव का समर्थन किया। परन्तु अमर ने कहा—'महाराज, अगर पीछे का आक्रमण ठीक

न हुआ तो किया-कराया सब मिट्टी हो जायगा। आगे नदी है, हूण लोग आगे बढ़ ही कहाँ सकते हैं। और अगर ताज़े सवार पर पीछे से भरपूर आक्रमण कर देंगे तो हमारी जीत में कोई सन्देह नहीं।'

अनिरुद्ध अमर का मतलब समझ गया। वह झुँझलाकर बोला—'महाराज, मुझे पीछे से ही आक्रमण करने दीजिए।'

महाराज को अमरसिंह की बात जँच गई। उन्होंने अमर से कहा—'अच्छा तुम सामने से ही आक्रमण करना। अनिरुद्ध-सिंहजी पीछे से आवेंगे।

युद्ध-समिति का अधिवेशन समाप्त हुआ तथा सब अपनी-अपनी तैयारियाँ करने लगे।

(५)

सूर्य की प्रथम किरण ने पृथ्वी पर पैर रक्खा ही था कि अमर के सवारों ने सिन्धु के बर्फ़ानी जल में घोड़े डाल दिये। अनिरुद्ध की सेना इस समय पुल पार कर चुकी थी। हूणों ने नदी का किनारा घेर लिया तथा अमरसिंह के सैकड़ों जवानों की लाशें नदी में तैरने लगीं। अमरसिंह की आज्ञा पर सवार बढ़े चले जा रहे थे। हूण निशाना लगा-लगाकर पानी में डग-मगाते अमरसिंह के सवारों पर बाण छोड़ रहे थे, परन्तु अमर-सिंह की दृढ़ता देखकर सवारों का साहस बढ़ा हुआ था और थोड़ी देर में वे किनारे पर थे। इसी समय हूण-सरदार मिहिरकुल ने बाण मारा और वीर अमरसिंह घायल होकर पृथ्वी पर गिर

पड़े। हूण सैनिक अमरसिंह को बन्दी करने को बढ़े ही थे कि पीछे से अनिरुद्ध के सवारों का ज़ोरदार आक्रमण हुआ। इस आक्रमण पर आश्चर्यान्वित हूण-सरदार मिहिरकुल को अनिरुद्ध ने बढ़कर बन्दी कर लिया। हूण भाग निकले।

अनिरुद्ध विजयोल्लास में था कि उसने सामने अमर को नदी की रेती पर पड़े हुए दम तोड़ते पाया। वह दौड़कर अमर के निकट पहुँचा। उसने रोते हुए आवाज़ दी—'भैया अमर!' अमर ने नेत्र खोले। उसने पूछा—'युद्ध का क्या हाल है?'

अनिरुद्ध ने उत्तर दिया—'हूण-सरदार गिरफ़्तार हो गया। सारे हूण या तो भाग निकले या क़त्ल हो गये।'

अमर ने कहा—'मैं अब शान्ति से मर सकूँगा। सारन्धा से कहना—मैंने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया।'

यह कहते-कहते अमर के प्राणपखेरू अनन्त में उड़ गये।

महराजिन

(१)

पंडित मातादीन के चौपाल में आज बड़ी भीड़-भाड़ है। वहाँ पक्के मकानवाले शुक्लों की बारात टिकी है। लिपी-पुती स्वच्छ दीवारों पर चाँदनी रात में नया फूस चमक रहा था। दालान के सामने ही बीसों खाटें पड़ी थीं, जिन पर बराती लोग दिखलाई पड़ रहे थे। कोई अपना रेशमी कोट उतारकर सन्दूक में रखने की फ़िक्र में था तो कोई मोज़े उतारकर खटिया के नीचे जूते उतारकर सरका रहा था। छोटे-छोटे बच्चे अपने चाचा ताउओं के कानों में धीरे-धीरे कह रहे थे 'भूख लगी है'। बधू के सम्बन्धी लोग भी बरात की आवभगत में लगे हुए थे। कुएँ पर कहार बरातियों के लिए पानी खींच रहे थे। गली में से शरबत का घड़ा सिर पर रखे हुए शर्माती हुई नौकरानियाँ चली आ रही थीं। बूढ़े और पारखी लोग आँख गड़ाये देख रहे थे कि शरबत के घड़े पीतल के हैं या काँसे के, बच्चे लोग ख़ुश हो रहे थे कि शर्बत आ गया, पर नवयुवकों को इन बातों के देखने की फ़ुर्सत न थी। वे सब चन्द्रशेखर को घेरे हुए प्रश्नों और फ़ब्तियों की झड़ी लगा रहे थे। एक कहता, 'चन्दा यार, भाभी से हमसे इन्ट्रोड्यूस ज़रूर करवा देना'। दूसरा कहता, 'तुम भी कैसी

बातें करते हो यह भी कोई कहने की बात है'। तीसरे साहब फ़र्माते, 'भाई, यह सब कुछ नहीं, ब्याह में चन्दा जितने रुपये चुरावे उनसे कानपुर चलकर एक पार्टी दे'। चन्दा हँस-हँस कर सब को जवाब देता जाता था। इसका हृदय इस समय अजीब प्रसन्नता व उत्सुकता से भरा हुआ था। 'वधू का गौर वर्ण होगा, काले-काले नागिन के केश होंगे, कमल समान नेत्रों में समुद्र लहराता होगा। शिक्षित और सुशील है ही; मेरा जीवन सार्थक हो जायगा। तब मैं यह करूँगा, वह करूँगा। तब मैं यह करूँगा, वह करूँगा।' चन्दा के हृदय में उस समय यही विचार उथल-पुथल मचा रहे थे। थोड़ी देर में लोगों ने शर्बत पीकर पूड़ियों की राह देखना शुरू की। वधू-पक्ष ने भी इस मामले में ढील न डाली, पूड़ी और शकर दस बजे आ पहुँची।

(२)

रात को देर से सोनेवाले बाबू लोगों ने दिन चढ़े उठकर बारात का रंग बिल्कुल उलटा देखा। उदास मुद्रा बनाए हुए चन्दा शामियाने के एक कोने में बैठा हुआ था। चन्दा के पिता बद्रीविशाल जी क्रोध में भरे हुए बैठे थे और अपने नाइयों और कहारों को दरी-गलीचे समेटने और शामियाने की रस्सियाँ खोलने की आज्ञा दे रहे थे। इतने में हाथ जोड़ते हुए शुक्लजी ने चौपाल में प्रवेश किया। आते ही उन्होंने चन्दा के पिता के पैरों पर टोपी रख दी और बोले—'महाराज आप जाते कहाँ हैं! हमारे ऊपर दया कीजिए, दरवाज़े पर से बरात न लौटाइये,

हमसे देते बना वह लग्न में दे दिया और जो बनेगा वह देंगे, पर आप बरात न लौटाइये।'

पर बद्रीविशाल इस समय आपे में न थे। वे होठ चबाते हुए बोले, 'तुम्हें कहते हुए शरम नहीं आती, हमसे कहते थे कि मेरी लड़की है और अपने मामा की नीचे कुल की लड़की ब्याह दी। लग्न भर में ४) दिये हैं, इसी मुँह को मेरा लड़का था। पैसा न कौड़ी सलाम करने दौड़ी। मँझगइयों का बी० ए० पास लड़का किस दम पर लेने दौड़ आये थे, धोखेबाज़ी की और बातें बनाते हो।' दूसरी तरफ़ उन्होंने हुक्म दिया 'उतारो जी शामियाना, बरात नहीं रुकेगी, नहीं रुकेगी, नहीं रुकेगी।'

शुक्लजी गिड़गिड़ाते रहे, 'महाराज वे माँ-बाप की लड़की थी, मामा का कोई ख़ान्दानी भी नहीं था जो व्याह करता। इसीलिए मैंने यह जाल रचा। पर अब तो वह आपकी बहू है और आप उसके ससुर, उसे विदा करा ले जाइये, तब जाइये।'

पर मिसिरजी ने एक न सुनी। उनके हुक्म से उसी समय बिस्तर बँध गए, सामान गाड़ी पर लद गया और मन में एक विचित्र प्रकार के भावों को लिए हुए लोग गाड़ियों पर चढ़ने लगे। चन्दा के पिता (मिसिर जी) को गाँव के लोग अब भी समझाने का प्रयत्न कर रहे थे पर वे इन बातों से पसीजने वाले न थे। उन्होंने किसी प्रकार विदा लेना स्वीकार न किया। गाड़ियाँ स्टेशन की ओर हाँक दी गईं।

लोगों के मुख पर उदासी थी। कोई बैठा कुछ सोच रहा था और कोई कुछ पर मिसिरजी सब को सान्त्वना दे रहे थे, 'किस बात की परवाह करते हो तुम, चन्दा का ब्याह मैं एक ही महीने में ठीक करता हूँ'। चन्दा बैठा सोच रहा था 'जिस दिन फलदान आया था, कैसा प्रसन्न हुआ था मैं। बारात चलने के दिन मेरे हृदय में कैसे-कैसे भाव उठ रहे थे, मेरे सब विचारों का पुल टूट गया; इस सब का दोषी कौन है! वे ही शुक्लजी महाराज जिन्होंने कपट की पालिश करके अपनी भलाई को चमकाना चाहा था, पर इसका कठोर दण्ड किसे मिल रहा है! एक अबोध अनजान और गरीब बालिका को, जो स्वयं ही असहाय है। समाज की ओर से अब उसे सुखों पर दृष्टि डालने की मनाई है, क्योंकि वह निर्धन है, निराश्रय है और आश्रय न ढूँढ़ने के लिए बाध्य है।'

(३)

चौपाल से बरात उठकर चली गई। थोड़ी देर पहले जहाँ शामियाने तने थे, ग़लीचा बिछा था, बड़े-बड़े शानदार लोग बैठे थे, वहीं अब धूल उड़ने लगी। धूप से आश्रय लेने के लिये कुत्तों ने कोनों में बैठकर हाँफना शुरू कर दिया और चौपाल के दरवाज़े पर महतो और सुखई ने चिलम सुलगाते हुए उखारी (गन्ना) की बुवाई के विषय में बातचीत छेड़ दी।

रामसनेही ने जब से यह सुना था कि बरात चली गई, तब

से उसकी दशा उसी कली की सी हो रही थी जो खिलने के पहले ही मुर्झा गई हो।

रामसनेही इन्हीं विचारों में मग्न थी कि शुक्लाइनजी (रामसनेही की भावज) ने आकर कहा, "बिटिया, गाड़ी तैयार है, चाची का बेराम छोड़ि आई रहौ, उनहीं की कुछ देख-भाल करा जाय के, अब हियाँ का धरा है!" रामसनेही ने आँसू बहाते हुए अपने कपड़े की छोटी-सी गठरी बाँधी और पास-पड़ोस की स्त्रियों की ओर करुण दृष्टि से देखा। वे उसके दुर्भाग्य पर आँसू बहा रही थीं। इसी समय गाड़ी मचियाते हुए भदई गाड़ीवान ने आवाज़ दी, 'घाम हुई रहा है भाई, बेर न करौ।'

शुक्लजी बैठे हुए बड़बड़ा रहे थे, आजकल होम करते हाथ जलता है। मैंने तो कहा था कि मामा को बिटिया है, निःसहाय है लाओ पाँव पूज दें; पर गये थे नमाज़ पढ़ने रोज़ा गले मढ़ी। अब सभी मेरे मुँह पर थूकते हैं, पहले किसी के मुँह में छेद न था।'

गाड़ी में बैठी, रोती हुई रामसनेही अपनी बूढ़ी चाची के पास, जिसने उसे उसकी विधवा माता के मरने पर दो साल की अवस्था से पाला था, चली जा रही थी।

(४)

पण्डित बद्रीविशाल मिश्र कानपुर के निवासी थे। उनकी वर्तमान मासिक आय लगभग १००) थी। मिश्रजी के एक ही लड़का था चन्द्रशेखर, जिसका प्यार का नाम था चन्दा। चन्दा

ने बड़े परिश्रम व उद्योग के बाद बी० ए० की डिग्री प्राप्त की थी। वह अब नौकरी का उम्मेदवार था।

मिश्रजी पुराने विचार के आदमी थे। हृदय में बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ थीं। इसीलिए उन्होंने चन्दा को उच्च शिक्षा दी थी। उनकी लम्बी-चौड़ी शर्तों ही के कारण चन्दा का ब्याह अब तक न हो पाया था। पर शुक्लजी की लच्छेदार बातों और सब्ज़बाग़ के कल्पित दृश्यों ने उन्हें फिसला ही दिया और उन्होंने बात पक्की कर ली थी।

बरात लौटाकर मिश्रजी चाहते थे कि ताव ठंढा न होने पावे। वे चन्दा का ब्याह बहुत ही जल्दी कर देना चाहते थे, क्योंकि जब से चन्दा वहाँ से लौटा था उन्होंने उसके मुख पर प्रसन्नता की छाया न देखी थी। पर एक दिन उन्हें इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि चन्दा की उपस्थिति में जैसे ही उन्होंने ब्याह की बात चलाई तो चन्दा ने नीचा सिर करके कहा, "दादा अब आप मेरे ब्याह की चिन्ता करें, मैं ब्याह न करूँगा।" उन्होंने देखा कि यद्यपि चन्दा के शब्दों में विनय का आभास था, परन्तु दृढ़ता उनमें पूर्णरूप से व्यक्त थी।

(५)

चन्दा की दशा देखकर मिश्रजी को बड़ी चिन्ता रहने लगी। अब वह दिन भर अपनी चारपाई पर पड़ा कोई पुस्तक देखा करता था या कुछ सोचा करता था। मिश्रजी ने ब्याह के लिए उसे बहुत समझाया-बुझाया, क्रोध भी दिखाया, पर उसने

न माना। कैरम-बोर्ड पर, जिसका उसको बड़ा शौक़ था, मनो गर्द जम रही थी; टेनिस के रैकेट में घुन लग रहे थे; शतरंज के मुहरे, जिन्हें कभी छुट्टी न मिलती थी, अब कमरे के एक कोने में लुढ़क रहे थे। मित्रों से मिलना-जुलना उसने छोड़ ही दिया था।

चन्दा की चिन्ता ने मिश्रजी को घुला दिया, वे बीमार रहने लगे। सुडौल शरीर सूखकर काँटा सा हो गया, कुन्दन का-सा रंग पीला पड़ गया और मुख की सारी आभा जाती रही। उन्होंने खटिया पकड़ ली। चन्दा व उसकी माँ ने मिश्रजी की बड़ी सेवा-सुश्रूषा की, इलाज में बहुत रुपया फूका पर वे मिश्रजी को कराल काल के हाथों से न छीन सके।

मिश्रजी की मृत्यु ने चन्दा की आँखें खोल दीं; क्रियाकर्म के लिए जब उसे अपनी माँ की हँसली बेचने जाना पड़ा, तो उसे अपनी अकर्मण्यता पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। पिता का सारा काम-काज निपटाकर जब वह निश्चिन्त हुआ तो उसने इधर-उधर दफ़्तरों में अर्ज़ियाँ भेजना शुरू कीं। क्योंकि घर की सारी पूँजी मिश्रजी की बीमारी में ख़र्च हो गई थी, और जो कुछ रहा सहा था वह क्रिया-कर्म में फूँक गया था। भाग्यवश नहर के दफ़्तर में उसकी पुकार सुन ली गई। ८०) मासिक पर लखनऊ में उसकी नियुक्ति हुई।

चन्दा यद्यपि अब तक गोदी का ही लाल था, उसे विदेश की कठिनाइयाँ झेलने की हिम्मत न पड़ती थी, पर परिस्थिति

के अनुसार वह अपनी माँ को ले जाना ठीक न समझता था। उसने समझा-बुझाकर बड़ी मुश्किल से माँ को न चलने के लिए राज़ी किया और स्वयं बिस्तरा बाँधकर लखनऊ के लिए रवाना हुआ।

(६)

१० बजे की मलिहाबाद से चली हुई रामसनेही भूखी-प्यासी शहज़ादेपुर पहुँची। घर आई तो बूढ़ी चाची जो अब तक इस संसार में उसका एकमात्र सहारा थी, जिसकी गोद में माता की गोद से परित्यक्त होकर उसने आश्रय ग्रहण किया था और जिसकी देखभाल में उसने गत १४ वर्ष ग्रहण किए थे, अन्तिम साँसें ले रही थी।

रामसनेही के पैरों की चाप सुनते ही चाची ने नेत्र खोले और दोनों हाथ फैला दिये। रामसनेही रोती हुई चाची से लिपट गई। चाची ने मानों निश्चिन्त होकर एक साँस ली, पर नहीं, वह उनके जीवन की अन्तिम साँस थी। रामसनेही रोती बिलखती रह गई। निष्ठुर विधाता ने उसका एकमात्र सहारा भी छीन लिया।

चाची की मृत्यु के पश्चात् रामसनेही के सामने उसकी जीविका का प्रश्न उपस्थित हुआ। जब तक वह जीवित रही उन्होंने उसे घर से बाहर न निकलने दिया था, पर अब इसके बिना काम न चलता था। अब वह ज़िमीदारों और अन्य रईसों के यहाँ से कूटने-पीसने को नाज ले आती और किसी प्रकार

दो रोटी का इन्तज़ाम करती, परन्तु उसे बड़ी तंगी रहती। जब उसे कूटने-पीसने को नाज न मिलता, तो वह बड़े संकट में पड़ जाती। ऐसे समय में उसकी सहायता रमदेई की बिटिया पुन्ना ही करती। पुन्ना ऐसे समय में बाज़ार जाकर उसके घर की कोई वस्तु बेचकर आटे-नमक का इन्तज़ाम करती।

पुन्ना की माँ रमदेई लखनऊ में एक बाबू के यहाँ रोटी बनाती थी। अब की जब वह लखनऊ से दो साल बाद आई, तो पुन्ना ने रामसनेही की करुण गाथा उसे सुनाई। दूसरे दिन रमदेई रामसनेही के पास पहुँची। पहले दोनों मिलकर ख़ूब रोई फिर रमदेई ने कहा, 'बेटी, यहाँ पड़ी-पड़ी क्यों तकलीफ़ उठाती है, यहाँ तेरा बैठा ही कौन है। वहाँ मेरे साथ चलकर किसी भले आदमी के यहाँ अगर रोटी बनायेगी तो तेरे पेट को कमी न पड़ेगी।'

रामसनेही ने सकुचाते हुए सरलता से पूछा, 'चाची, शहर में सुनते हैं कोई किसी के सुख-दुःख में खड़ा नहीं होता। शहर में बुरे आदमी बहुत होते हैं।' रमदेई ने रामसनेही के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, 'बेटी, इस दुनिया में कौन किसका मित्र है और कौन किसका शत्रु। मैं कहती हूँ कि वहाँ भी मरूँगी तो कोई माई का लाल चार लकड़ी रखकर फूँक ही देगा। और भले बुरे का जो तू कहे, तो मैं तो वह जानती हूँ कि आप भला तो जग भला। अगर मेरे मन में खुटाई नहीं है तो किसकी हिम्मत है जो मेरी तरफ़ आँख उठाकर देख ले। पुन्ना के बाप

को मरे आज चार बरस हुए, तबसे मैं शहर ही में रहती हूँ, पर किसी ने सिंहिनी का दूध न पिया था जो मेरी तरफ़ नज़र उठाकर देख लेता। मुँह फूँक देती मरे का।'

अन्त में रामसनेही राज़ी हो गई और वह तीसरे दिन रमदेई के साथ लखनऊ चल दी।

(७)

लखनऊ पहुँचकर पहले चन्दा केनाल के दफ़्तर पहुँचा। बारह बजे से काम समझते-समझते शाम के चार बज गये तब उसे छुट्टी मिली। हेड क्लार्क साहब ने फ़रमाया, 'आप कल १० बजे आफ़िस आकर अपना काम शुरू कर दीजिये।'

जब चंदा दफ़्तर के बाहर निकला तो दूसरी चिन्ताएँ सवार हो गयीं। धर्मशाला में आकर बिस्तरा रक्खा और मकान ढूंढने के लिये निकला। थोड़े किराये का मकान ढूँढता था और सब आराम भी चाहता था, कम ख़र्च और बालानशीं वाला सवाल था। किसी में कुछ कमी निकलती थी और किसी में कुछ। जब घूमते-घूमते दिया जलने का समय आ गया तो परेशान होकर चन्दा ने धर्मशाला की राह ली। वह जिस किसी को इस समय अपने घर जाते हुए देखता वही उसे सबसे अधिक सुखी प्रतीत होता था। जिस घर से वह धुवाँ निकलता देखता वही उसे सुख और शान्ति का एकमात्र स्थान सा प्रतीत होता था। बाज़ार में एक दूकान पर खाना खाया और धर्मशाला में जाकर लेट रहा।

प्रातःकाल उठते ही चन्दा को फिर वही चिन्ता परेशान करने लगी। धर्मशाला से निकलकर फिर उसने गली-कूचों में मकान तलाश करना आरम्भ किया और एक मकान उसे पसन्द भी आ गया। मकान मालिक भला आदमी था, किराया भी जल्दी ही तय हो गया। चन्दा ने उसी समय धर्मशाला से अपना सामान वहाँ ला पटका।

सन्दूक से उसने माँ के दिए हुए बर्तनों को निकाला। पड़ोस ही में डोली उठानेवाले कहारों का एक अड्डा था, वहाँ से उसने एक महरी को बुलाया। महरी ने रसोई-घर धोकर चूल्हा जला दिया और बटुई माँजकर रख दी। पास ही दूकान से दाल चावल आदि लाकर उसने खिचड़ा, जो परदेशी विद्यार्थियों और अकेले बाबुओं का एकमात्र आधार है, चढ़ा दी।

खाने के बाद दफ़्र जाते समय चन्दा ने महरी को चाबी देते हुये कहा—'महरी, मुझे खाना बनाना नहीं आता, अभी कुछ महीनों के लिए किसी महराजिन का इन्तज़ाम हो जाय, तो बड़ा अच्छा हो। बाज़ार का खाना मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं।'

महरी हताश-सी होकर बोली—'बाबू, ऐसी कौनों महराजिन नाहीं रहत है। रामबाबू के हियाँ एक रहत है ओह से कहबै।'

चार रोज़ हो गये। इसी बीच चन्दा को रोटी बनाने का मज़ा मिल चुका था। महरी एकबार चूल्हा जलाकर अपने काम-काज पर चली जाती। रोटी कच्ची-पक्की सेंकते-सेंकते जैसे ही चूल्हा बुझता, तो फिर चन्दा फूँकते-फूँकते हैरान हो जाता,

शरीर से पसीना और आँख से आँसू निकलने लगते, पर चूल्हा जलने का नाम तक न लेता। परेशान और रुआंसा-सा होकर चन्दा आटे को तो सड़क पर गाय के लिये डाल देता और भूखा दफ़्तर चला जाता।

सन्ध्या का समय था, महरी दो स्त्रियों को साथ लेकर चन्दा के घर आई। एक प्रौढ़ा थी और दूसरी बालिका। वह आते ही बोली—'बाबू, ई महराजिन रोटी बनाय देहैं। आप बात-चीत करि लेओ।'

चन्दा का बोझ उतर गया। बोला—'ठीक है, यह सबेरे से ही खाना बनाना शुरू कर दें, तनख़्वाह जो यह कहेंगी, मैं दूँगा।'

पर प्रौढ़ा ने कहा—'बाबू ५) महीना और खुराक़ से कम न होगा। हाँ, आपसे एक बतलाये देती हूँ कि इसे इस काम का अधिक तजुर्बा नहीं है, जो भी ग़लती हो, समझाकर कह दीजिएगा। अभी इसे किसी की बात सुनने की आदत नहीं है।'

दूसरे दिन से ही महराजिन खाना बनाने लगी। उसने बड़ी नम्रता से चन्दा को समझाया कि महीने भर का सामान इकट्ठा लाने में सुभीता रहता है। कुछ दिनों में ही चन्दा की पूरी गृहस्थी-सी बन गई। उसे अब सब प्रकार से आराम था। महीने के पहले इतवार को वह आटा, दाल, चावल, घी, शक्कर, मसाला आदि सब लाकर रख देता, फिर उसे महीने भर तक किसी बात की चिन्ता न रहती। उसे दोनों वक्त बनाया स्वादिष्ट

भोजन मिलता। महराजिन यद्यपि अभी सत्रह अठारह की ही प्रतीत होती थी तो भी वह भोजन बनाने के कार्य में बड़ी चतुर थी। महराजिन ने आकर उसकी बहुत सी कठिनाइयों का सरल बना दिया।

(८)

कानपुर से लखनऊ आये चन्दा को दस महीने हो गये। माता के पत्र आते, वह लिखती—'बेटा, मुझे यहाँ अकेले अच्छा नहीं लगता, तुम वहाँ तकलीफ़ उठाते होगे। मेरी आँखों के सामने दिन-रात तुम्हारी सूरत फिरा करती है।'

चन्दा यह सोचता कि कानपुर के मकान को यदि बेच डालूँ या कुछ इन्तज़ाम करूँ, तब अम्मा को वहाँ से लाना भी ठीक है। अभी तक उसकी नौकरी टेम्परेरी थी, किन्तु पिछले महीने से वह पर्मानेन्ट हो गयी थी। माँ के पत्रों में इतना भारी आग्रह देखकर उसने तय किया कि वह माँ को लखनऊ ले आये।

सन्ध्या का समय था। कल से दशहरे की छुट्टी भी तय हो गई थी। खाना बनाकर जैसे ही महराजिन घर जाने लगी, चन्दा ने पुकारा 'महराजिन!'

महराजिन कुछ दूर पर आकर खड़ी हो गई। चन्दा ने कहा—'मैं कल अपनी माँ को लेने जा रहा हूँ, अब मुझे तुम्हारी आवश्यकता न रहेगी। तुमने लगभग १० महीने मेरे यहाँ काम किया और मुझे तुमसे कोई तकलीफ़ नहीं मिली। तुम्हारे जीवन

व रहन-सहन को देखकर मैंने अनुमान किया है कि तुम दुखिया हो। मैं स्वयं ही एक ऐसा प्राणी हूँ, इसलिए मैं तुमसे सहानुभूति रखता हूँ। तुम्हारी आख़िरी महीने की तनख़्वाह और इनाम के दस रुपये, यह लो। मुझे तुम्हें छुड़ाते हुये दुःख होता है।'

महराजिन के मुख से इन बातों का कुछ भी उत्तर न निकला। अपनी धोती के आँचल से गीले नेत्रों को पोछते हुये वह चन्दा के घर से बाहर हुई।

(६)

घर पहुँचकर रामसनेही ने रमदेई से कहा—'जिया, आज बाबू ने जवाब दे दिया। वो अब रोटी न बनवायेंगे।'

रमदेई ने जल्दी से पूछा—'क्यों, तकरार हो गयी क्या? वह तो बड़े सीधे मालूम होते हैं।'

रामसनेही ने गंभीरतापूर्वक कहा—'नहीं, अब उनकी माँ यहीं आकर रहेंगी, उन्हें अब महराजिन की ज़रूरत नहीं।'

रमदेई ने कहा—'अच्छा।'

रामसनेही अबकी बड़े चाव से बोली—'जिया, दस-ग्यारह महीने गाँव से आये हो गये। चलो गाँव ही चलो। यहाँ अब अच्छा नहीं लगता।'

रमदेई ने गंभीरतापूर्वक कहा—'अच्छी बात है, रामबाबू भी बनारस जा रहे हैं, पन्द्रह दिन में लौटेंगे। तब तक चलो गाँव ही हो आवें।'

दूसरे दिन दोनों ने गाँव के लिए डेरा कूच कर दिया।

(१०)

चन्दा ने घर पहुँचकर जैसे ही दरवाज़े पर पैर रक्खा, माँ ने दौड़कर उसे हृदय से लगा लिया। चन्दा ने देखा कि माँ में गत दस मास में ही भारी परिवर्तन हो गया है। वैधव्य और पुत्र-वियोग दोनों ने मिलकर उसे पूर्णरूप से बुढ़िया बना दिया है।

दोपहर को भोजन करके जब माँ-बेटा बैठे, तो माँ ने कहा—'बेटा! देखो अब मेरा भी बुढ़ापा आ गया। चूल्हा-चौका करने में अब बड़ी तकलीफ़ होती है। धरम जो मैंने ज़िन्दगी भर निबाहा, अब छोड़ते नहीं बनता। मैंने तुम्हें पाला-पोसा था, यही सोचकर कि अभी सेवा करती हूँ तो बुढ़ापे में मेवा देगा। उनके सामने तो मेरी एक चलती न थी, जो मैं शहज़ादे-पुर वालों की बात अधिक चलाती। दूसरा ब्याह करने की तुम्हारी इच्छा न थी, पर मैं तुम से अब यह पूछती हूँ कि तुम पढ़े-लिखे हो यह बताओ कि उस लड़की ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा जो तुम उसकी ज़िन्दगी ख़राब कर रहे हो! ब्याह को तीन बरस हो गये और तुमने उसकी सुधि तक न ली।'

चन्दा ने बच्चों की भाँति माँ के आँचल में मुँह छिपाते हुये गद्गद कंठ व प्रसन्न मन से कहा—'अम्मा, मैंने तुम्हारी बात कब टाली है, मैंने एक बात चाहे दादा की न मानी हो पर तुम्हारी बात आज तक मैंने कभी नीचे नहीं पड़ने दी।'

अम्मा ने कहा—'तो मैं उसको बिदा करा लूँ?'

चन्दा कमरे के बाहर जाते हुये बोला—'जो तुम ठीक समझो, वही करो।'

अम्मा ने चन्दा की मूक स्वीकृति को समझ उसी समय नौकर से चन्दा के फुफेरे भाई दुर्गा को, जिसकी बादशाही नाके पर दूकान थी, बुलवाया और उससे विदा कराने जाने के लिये दूसरे दिन शहज़ादेपुर जाने का ठीक ठाक कर लिया।

(११)

रामसनेही को लखनऊ से आये तीन रोज़ हो गये, पर उसे यहाँ भी तनिक सी शान्ति या सान्त्वना न मिली। उसका किसी बात में मन ही न लगता। बैठी-बैठी अतीत की कल्पना किया करती थी या अपने विगत जीवन की रूप-रेखा निहारा करती।

सन्ध्या हो चुकी थी। गोधूलि का समय समाप्त हो गया था। धुँधला-धुँधला अँधेरा फैल गया था। पड़ोसियों के घर से अपनी देहली के पास बैठी हुई रामसनेही के कानों में सिर हिला-हिला कर सानी खानेवाले जानवरों की घण्टी और बर्तनों में दूध दुहने की छुन छुन आवाज़ आ रही थी। दिया-बत्ती का समय हो गया था, पर रामसनेही अँधेरे में ही देहली के पास बैठी हुई इधर से उधर कन्धे पर हल रखे हुए जानेवाले किसानों के जीवन पर विचार कर रही थी।

इसी समय चौतरे के पास ही इक्के पर से एक युवक उतर पड़ा। उसने एक राहगीर से पूछा—'हीरी काका का मकान यही है?'

'हाँ!'—उत्तर मिलने पर वह युवक रामसनेही के मकान की कच्ची सीढ़ी पर चढ़ने लगा। यह देखकर रामसनेही ने मुँह मूँद लिया और अन्दर भगी।

दालान में आकर युवक ने कहा—'मैं हूँ चन्दा बाबू का भाई दुर्गा, मुझसे लाज क्यों करती हो, मैं तुम्हारा देवर हूँ।'

दिया जलाते हुए रामसनेही ने घूँघट ज़रा ऊँचा कर लिया और चारपाई पर दरी बिछाकर धीरे से पूछा—'वहाँ सब लोग कुशल से तो हैं?'

दुर्गा ने कहा—'सब लोग कुशल से हैं। परसाल बड़े मिसिर चल बसे, और सब आनन्द है। तुम्हें बिदा कराने आया हूँ, कल चलना होगा, अम्मा ने बुलाया है।'

रामसनेही जैसी खड़ी थी वैसी ही खड़ी रह गयी और फिर दुर्गा की ओर इस प्रकार देखा, मानों उसे उसकी बात पर विश्वास ही नहीं हुआ।

दुर्गा भी रामसनेही की दशा निहारता रहा। इतने में रामसनेही ने निश्चिततापूर्वक एक ठंडी साँस लेकर कहा—'चलो, सुध तो ली।'

(१२)

आज चन्दा के घर में बड़ी चहलपहल थी। दरवाज़े पर मित्रमण्डली जमा थी। खूब चुहलबाज़ी हो रही थी। चन्दा बाबू को लोग बधाई देने आ रहे थे। बैठक में रखा हुआ ग्रामोफ़ोन सब का मनोरञ्जन कर रहा था। लोगों के लिये नाश्ते की तश्तरियाँ लाई जा रही थीं।

अन्दर स्त्रियाँ रेशमी वस्त्र पहने हुये इधर से उधर आ-जा रही थीं, कोई पान की तश्तरी लिये जा रही थी, कोई बच्चों के मिठाई लिये जा रही थी। आँगन में गाना हो रहा था, कुछ औरतें बहू को घेरे हुये बैठी थीं, बहू के मुँह देखने के लिये आज टिकट लगा हुआ था। जो कोई शर्माशर्मी देता था वह भी ४) से कम न होता। इस प्रकार बहू की मुँह दिखाई हुई।

बाहर पुरुषों का जमघट था और अन्दर स्त्रियों का। बच्चे भीतर बाहर दोनों एक किये थे। वे दोनों जगहो की बानगी देखते थे।

चन्दा की माँ के मुख पर मुस्कराहट की रेखा आज मिश्रजी की मृत्यु के बाद पहली दफ़े दिखलाई दी। उनका पैर आज एक स्थान पर न टिकता था, कभी कोठरी से जाकर मिठाई निकालकर देतीं, कभी गुसलख़ाने की तरफ़ जातीं बरफ के पानी के लिये।

धीरे-धीरे भीड़-भाड़ कम हुई, यारों ने अपनी बाइसिकलें उठा उठाकर घर की राह ली और स्त्रियों ने अपनी चद्दर सम्हाल सम्हालकर घर का रास्ता पकड़ा। दिन भर के थके हुये चन्दा बाबू भी भोजन करके विश्राम करने पहुँचे। थोड़ी देर में लजाती शर्माती बधू ने धीरे से द्वार खोला। दोनों की आँखें मिलते ही बधू के मुँह से निकल पड़ा 'अरे! बाबूजी आप!'

और चन्दा बाबू के मुँह से—'अरे महराजिन तुम...!'

उसी क्षण उनके पवित्र बन्धन ने उन्हें बाहुपाश में बद्ध कर दिया।

दिल की टपकन

जब से शहंशाह शाहजहाँ की आँखों की नूर बेगम मुमताज़ महल की मौत हो गई थी, वे अगर किसी काम में उन दिनों दिलचस्पी लेते थे तो वह था बेगम के रोज़े के लिए नक्शे देखना। लेकिन आज जैसे ही हुज़ूर शाहजहाँ सो कर उठे उन्होंने बेधशाला से ज्योतिषी को बुलाने का हुक्म दिया, और वह फ़ौरन ही हाज़िर भी हुआ।

उस समय बादशाह के मुख पर गंगा-जमुना के संगम की भाँति प्रसन्नता व चिन्ता की मिली हुई रेखाएँ खिंची थीं। ज्योतिषी ने आते ही यह सब लक्ष्य कर लिया। जब से महाराज जयसिंह ने वेधशाला बनवाई थी, तभी से वह इस में काम करते-करते वृद्ध हो गया था। दो बादशाहों की मौत और राजकुमारों की छीना-झपटी उसने अपनी इन्हीं आँखों देखी थी और वैसा ही उसकी अवस्थानुसार दरबार में उसे सम्मान भी मिलता था। पर जब से गुण के सच्चे पारखी शहंशाह अकबर स्वर्ग सिधारे थे, वह अपने सिर को धड़ से हमेशा जुदा ही समझता था।

ज्योतिषी को आदरपूर्वक बैठाने के बाद शहंशाह ने कहा, "ज्योतिषी जी सुनिए, आज रात को मैंने ख़्वाब में देखा कि मैं

शाही बाग़ में बैठा हुआ रञ्जीदा दिल से यही सोच रहा था कि सैकड़ों हज़ारों नक्शे देख डालने पर भी मुझे एक भी नक्शा अपनी प्यारी बेगम के रोज़े के लायक न जँचा तो क्या मैं अपने मन के माफ़िक रोज़ा उसकी क़ब्र पर न बनवा सकूँगा, कि सफ़ेद बुर्राक कपड़े पहने एक जईफ़ मेरे सामने आ खड़ा हुआ। ग़ौर से देखने पर मालूम हुआ कि उसकी शक्ल और उसकी कोहनियों के पास लगे हुए उसके दो पर हमारे दीने इस्लाम में बताए हुए फ़रिश्तों से उसे बिलकुल मिला देते थे। उसने मुझे हाथ का इशारा दे कर अपने पीछे आने को कहा और मैं जादू से बँधा जैसा उसके पीछे-पीछे चल दिया। थोड़ी दूर चलने पर ही वह उड़ने लगा और मेरी तरफ़ हाथ बढ़ा कर उसने ऊँचा उठना जारी रखा और जैसे ही उसने मेरी तरफ हाथ बढ़ाया कि मेरे भी पैर ज़मीन से उठ गए। हम लोग इस तरह बिना ज़रा भी थके हुए छः आस्मान पार कर सातवें आस्मान पर पहुँचे। वहाँ एक हीरे की तरह चमकते हुए दरिया के किनारे एक बहुत ही ख़ुशनुमा बाग में संगमर्मर का एक रोज़ा ऐसा शानदार बना हुआ है कि जिसके ऐसी ख़ूबसूरत इमारत न कभी देखी गई और न कभी सुनी ही गई। उस फ़रिश्ते ने रोज़े की तरफ़ हाथ उठा कर कहा, 'अपनी प्यारी बीवी का रोज़ा इसी तरह का बनवा।' इतना कह कर वह तो नज़र से ओट हो गया और मैं घंटों खड़ा उस रोज़े को देखता हुआ यही सोचता रहा कि क्या दुनिया के नाचीज़ आदमी ऐसा ख़ूबसूरत रोज़ा बना सकेंगे।

नींद खुलने पर अपने आपको मैंने बिस्तरे पर पड़ा हुआ पाया। अब तब से मैं यही सोच रहा हूँ कि किस तरह उस ख़ूबसूरत रोज़ का नक्शा बने और किस तरह वह तैयार हो। अगर आप इस मामले में मेरी कोई मदद कर सकते हों तो बताइए।"

ज्योतिषी ने थोड़ी देर सोचने-विचारने के बाद कहा, "गुस्ताख़ी माफ़ हो हुज़ूर, आपके मेहमानख़ाने में एक तुर्की नक्काश बहुत दिनों से टिका हुआ है। जोग कुछ ऐसा है कि उसके और आपके कुछ ग्रहों की चाल बिलकुल मिलती हुई है। नतीजा यह होता है कि बहुत से मामलों में जैसा आप सोचते-विचारते हैं वैसा ही उसका दिमाग भी करीब करीब दौड़ता है। रात में यह ख़्वाब उसने भी देखा है। आप ही की तरह उस रोज़ को देख कर उसे भी बेचैनी हुई है और आज सुबह से वह उसका नक्शा बनाने में लगा हुआ है। इतमीनान न होता हो तो किसी को भेज कर दिखवा लीजिए। लेकिन शाम तक उसे तलब न कीजिएगा और गुस्ताख़ी माफ़ हो, आपके तलब करने पर भी वह इस वक्त आएगा नहीं। शाम तक उसका नक्शा तैयार हो जायगा, तब उसे लेकर आपकी ख़िदमत में वह खुद हाज़िर हो जायगा।

शहंशाह को ताज्जुब हुआ कि मेहमानख़ाने में कोई ग़ैर-मुल्क का आदमी टिका हो और उन्हें इस बात की ख़बर तक न मिले। ख़िदमतगार से मेहमानख़ाने के मुन्तज़िमकार को हाज़िर करने को कहा और तुर्की नक्काश के बारे में उससे दरयाफ़्त किया।

उसने दस्तबस्ता अर्ज़ की, "बन्दापरवर, आजकल हुज़ूर की तबीयत नासाज़ होने की वजह से मैंने इस अदना सी बात की आपको इत्तला देना ज़रूरी न समझा। वह तुर्की नक्काश यहाँ आया तो हुआ है कई दिन से, रहता भी बहुत फटा-फटा है, किसी से न मिलना न जुलना। फिर भी आज सुबह आप मुझे जगा कर कहने आए थे कि देखो मैं आज एक बहुत ज़रूरी काम में लगा हूँ, कोई इसमें ख़लल न डाले। मैं मन ही मन हँसा कि इसको क्या ख़ब्त सूझा है, इसका यहाँ कौन मुलाकाती बैठा है जो इससे मिलने आएगा? थोड़ी देर में जा कर देखा तो अपने कमरे को बन्द किए वह कोई नक्शा बनाने में शायद जुटा हुआ है। दरवाज़े अभी तक नहीं खुले।"

बादशाह और ज्योतिषी की आँखें मुन्तज़िम की बातें सुन कर मिल गईं। बादशाह ने कहा, "अच्छा सुनो, उस पर नज़र रखो और जब वह मुझसे मिलने की ख्वाहिश ज़ाहिर करे उसे फ़ौरन पेश करो।"

फिर उन्होंने ज्योतिषी से पूछा, "पंडित जी एक बात जानने की मुझे बड़ी ख्वाहिश है, वह यह कि यह कैसे मुमकिन हो सका कि उसे और मुझे एक ही तरह का ख्वाब रात में दिखाई दिया?"

पंडित जी ने कहा, "जनाबे आली, इसकी वजह यह है कि उसके और आपके बृहस्पति की चाल कभी-कभी एक सी हो जाती है। चूंकि बृहस्पति दिमाग़ पर असर डालने वाला ग्रह

है, इसी वजह से आपके और उसके दिमाग़ों ने एक ही तरह का काम किया। ऐसा आगे भी होना मुमकिन है।

बादशाह ज्योतिषी से बहुत ख़ुश हुए। उसे इनाम-इकराम दे कर रुख़सत किया और बैठ कर उस तुर्की नक्काश के आने का इन्तज़ार करने लगे।

× × ×

"वाह ! बहुत ख़ूबसूरत, ठीक यही, अच्छा यह तो बताओ तुम्हारे दिमाग़ में ऐसा ख़ूबसूरत ख़्याल कैसे पैदा हुआ ? ठीक ठीक बताना ?"

"आप के सामने झूठ बोलने की गुस्ताख़ी तो कर नहीं सकता। सच तो यह है कि यह रोज़ा रात को मैंने ख़्वाब में देखा था उसी ख़्याल पर यह नक्शा तैयार किया है।"

"शाबाश ! तुम बहुत सच्चे आदमी हो। मैं तुमसे बहुत ख़ुश हूँ। अच्छा, यह बताओ तुम्हारे ख़्याल से इसके बनने की लागत क्या होगी ?"

"लागत की तो यह बात है, बन्दापरवर, कि जैसा पत्थर और सामान इसमें आप लगवाइएगा वैसी ही लागत बैठेगी। लेकिन अगर इसमें अव्वल दर्जे का मसाला, पत्थर और जवाहरात लगेंगे, तो लागत चार करोड़ के करीब पहुँचेगी। उस हालत में इसमें मेड़ाघाट और मनका का संगमर्मर, पचीकारी के लिए इटली का संगमूसा और दुनिया में बहुत थोड़ा

पाया जाने वाला सुनहरा पत्थर और काफ़ी नक़ली व असली जवाहरात लगेंगे।"

"अच्छा मुझे इसी लागत पर बनवाना मंजूर है, तुम इसके लिए सामान करो।"

× × ×

यमुना के किनारे चमकती धूप में हज़ारों मज़दूर अपने काम में जुटे हुए थे। तीन दिन के अन्दर ही रोज़े की कुर्सी बन कर तैयार हो गई थी। कहीं संगतराश संगमर्मर पर कुरान की आयतें खोद रहे थे, कहीं खुदे हुए बेल-बूटों में संगमूसा भरा जा रहा था, कहीं जाली काटी जा रही थी, तो कहीं शिला पर बने हुए दृश्यों में रंग भरा जा रहा था।

उस्ताद ईसा, बादशाह के कृपापात्र तुर्की इन्जीनियर, कुशल कलाकार, सब लोगों के कार्य को देखते और उन्हें उचित परामर्श देते थे। उन्हें इस कार्य की सब शाखाओं का पर्याप्त अनुभव था और संसार के प्रसिद्ध कारीगरों से वे पूर्णतया परिचित थे। ताजमहल बनाने के लिए उन्होंने एक से एक चतुर कारीगर एकत्र किए थे। कब्र वाले हॉल के दरवाज़े पर जिस सुनहले पत्थर से कुरान की आयत खुदी है, वह संसार भर में भी इतना न मिल सका कि आयत पूरी हो जाती। उस्ताद ईसा ने अपने एक कारीगर को वैसा पत्थर रंगने का हुक्म दिया। शाहज़ादा दारा अक्सर इस इमारत को बनता देखता था कि एक आदमी कूँची लिए हुए एक छोटा सा पत्थर का टुकड़ा

रँगता रहता है और वह भी अभी पूरा नहीं हो पाया है, आधा ही रँगा गया है। एक दिन वह बिगड़ कर बोला, "यह तुम किस तरह काम करते हो जी, इतना सा टुकड़ा आख़िर कब तक रंगोगे ?"

वह बोला, "गुस्ताख़ी माफ़ हो हुज़ूर, यह बात आपकी समझी हुई नहीं है, आप दख़ल न दें।"

पर शाहज़ादा तो शाहज़ादा, बिगड़ उठा। उधर कारीगर चले जाने को तैयार हो गया। इतने में उस्ताद ईसा आ गए और उन्होंने उस पत्थर को तुड़वा डाला। शाहज़ादे को बड़ा ताज्जुब हुआ जब उसने देखा कि वह पत्थर अन्दर भी आधा सुनहरा हो गया है।

शाहजहां को इस बात की ख़बर लगी। तो उन्होंने हुक्म निकलवा दिया कि जो भी कोई वहाँ देखने जाय, कारीगरों के काम में दख़ल न दे। उस्ताद ईसा की ख़ाकसारी, जांफ़िसानी, बुद्धिमानी, कार्य-कुशलता और नेकनीयती पर बादशाह शाहजहाँ निसार थे और उसे सब से अधिक कर्तव्य-परायण देखकर बादशाह ने दिल में उसे सगे भाई ही नहीं, उससे भी बढ़कर सच्चे दोस्त की जगह दी थी।

× × ×

सन् १६३२ के शुरू हुए ताजमहल में, जब से सन् १६४२ में जा कर अन्दरूनी मकबरा तैयार हुआ है, बादशाह शाहजहां के मन में एक बात उठ खड़ी हुई है। बादशाह ने जब से

जवाहरातों से जड़े हुए संगमर्मर के उस रोज़े को देखा है, जो अपने सौंदर्य-पट को दिन के प्रत्येक भाग में आकाश से प्रतिविम्बित होकर बदला करता है, जो उनकी कीर्ति को सदा अक्षय रखने वाला है, जो उनके मुमताज़ महल के सच्चे प्रेमी होने का द्योतक है और जो वास्तव में संसार की इमारतों में अद्वितीय है, वे अपने को उस्ताद ईसा और उसके चतुर कारीगरों को अत्यधिक आभारी समझते हैं।

धीरे-धीरे दस साल और बीते और सन् १६५२ में ताजमहल के चारों तरफ़ फाटक और मसजिद बन गए। अब ताजमहल की श्वेत संगमर्मर की मीनारें अपने सुन्दर बाग के बीच काश्मीर की हरियाली में बर्फ की चोटियों सी शोभा देती थीं।

आज ताजमहल में बनने का सारा काम ख़त्म हो गया था। बादशाह शाहजहां सायंकाल ताजमहल देखकर लौटे थे, तब से वे एक बात सोचते थे, "यह निश्चय ही संसार की सर्वश्रेष्ठ इमारत है, लेकिन इसका श्रेय उस्ताद ईसा और उसके चतुर कारीगरों को ही तो है। उन्होंने यह सुन्दर इमारत क्यों बनाई? क्या मेरे हृदय की भावनाओं से प्रभावित हो कर? ज्योतिषी का तो ऐसा ही कथन था। लेकिन उसके ताजमहल बनाने को वजह और भी जो हैं। उसने ताजमहल बनाया है क्योंकि वह सच्चा कलाकार है और उसके हृदय की भावनाएँ उसे कलात्मक कार्य करने को बाध्य करती हैं। उसने इसे बनाया है क्योंकि मैंने उसे रुपया भी तो काफ़ी दिया है। इस प्रकार तो जब

उसके मन में तरंग उठे या जब उसे कोई धन दे तो वह इसके ऐसी या इससे अच्छी इमारत भी बना सकता है। उस हालत में तो ताजमहल दुनिया की सबसे अच्छी इमारत न रह जायगी। ऐसा न हो, इसकी क्या तरकीब है? उस्ताद ईसा और और उसके कारीगरों की मौत। तो मुझे इतनी वफ़ादारी से काम करने वालों का क़ातिल होना पड़ेगा! लेकिन हां, अगर मैं इनके हाथ कटवा लूं तो भी तो मेरा मतलब हल हो जायगा। उनके खाने भर को मैं काफ़ी रुपया भी दे दूंगा। मौत की सज़ा से तो यह लाख दर्जे अच्छा रहेगा और मेरा मतलब भी हल हो जायगा। तो मुझे उस्ताद ईसा के हाथ भी कटवाना है, उसी से तो सबसे ज़्यादा ख़तरा है।"

× × ×

आगरे के किले में जोधबाई के महल के तहख़ाने में बादशाह शाहजहाँ व उनके ख़जाञ्ची बैठे थे। सामने ताजमहल के बनाने में जिन प्रमुख कारीगरों का हाथ था उसके हाथ जल्लाद गँड़ासे से काट रहा था। उस समय अपने दिल से कृतघ्नता की जलन मिटाने के लिए बादशाह शाहजहां उन कारीगरों को मुंहमांगा रुपया दे रहे थे।

आख़िरी नम्बर उस्ताद ईसा का था। जब थोड़े ही आदमी बाक़ी रह गए, उस्ताद ईसा एकाएक उठ खड़े हुए, "हुज़ूर, मुझे कुछ अर्ज़ करना है।"

बादशाह ने अपनी आँखों से निकलते हुए आँसुओं को छिपाने के लिए दूसरी ओर मुंह फेर कर कहा, "कहो।"

"मैं चाहता था कि एक बार रोज़े का चक्कर लगा कर देख आऊँ कि उसमें कोई नुक्स तो नहीं रह गया, क्योंकि सब लोगों के हाथ कट जाने के बाद मुमकिन है उसे कोई दूसरा ठीक न कर सके।"

बादशाह का हृदय एक बार चीत्कार कर उठा। "ओह! मैं कितना कृतघ्न हूँ जो अपने इतने बड़े हितचिन्तक के साथ यह सलूक कर रहा हूँ!" लेकिन उसी क्षण उनके स्वार्थ ने उन्हें अपने मनोविकारों को दबाने में समर्थ कर दिया और वे बोले, "हाँ, ज़रूर देख आओ।"

उस समय तक कलियुग के चरण आज के इतने ज़ोरदार न थे। लोगों की बात का विश्वास किया जाता था। शाहजहाँ ने उस्ताद ईसा के साथ आदमी भेजना उसकी बेइज़्ज़ती समझा।

उस्ताद ईसा इधर-उधर देखकर ताज के ऊपरी हिस्से में चढ़ गया जहाँ गुम्बज बना हुआ है। इधर-उधर नज़र डालकर उसने अपनी जेब से रुखानी निकाली और एक जगह एक बहुत बारीक छेद कर दिया।

× × ×

कुछ ही समय बाद उस्ताद ईसा हाथों के कटने के दर्द से छटपटा रहे थे और बादशाह अपने हृदय की ग्लानि से।

पानी की पहली फुहार पड़ी और ताजमहल में मुमताज

महल की क़ब्र में दिल पर पानी की बूंदों की टपकन शुरू हो गई। हरकारे ने देखा तो उसका कलेजा मुंह को आया। घबराया हुआ बादशाह सलामत को ख़बर देने पहुँचा, तो मालूम हुआ कि एक क्षण पहले ही अनायास उनके दिल में टपकन (टीस) शुरू हो गई है।

ख़ैर उसने बादशाह के सामने वाकया बयान किया, तब उन्हें अपनी दिल की टपकन की वजह मालूम हुई।

उस्ताद ईसा शाही पेन्शन पाते और आगरे में ही रहते थे। कई बार उन्होंने अपने वतन को जाने की इच्छा प्रकट की, लेकिन बादशाह शाहजहां ने इजाज़त न दी। वे उसी वक्त बुलाए गए।

"ईसा," बादशाह ने दिल के दर्द से कराहते हुए कहा, "बेगम की क़ब्र में ठीक दिल पर पानी की बूंदें टपक रही हैं।"

ईसा बादशाह की हालत पर ग़ौर कर रहा था और इस समय उसे ग्लानि हो रही थी कि उसने ऐसे प्रेमी मनुष्य के हृदय पर सदमा पहुँचाया था जिसने बीस साल तक उससे घनिष्ठ मित्र भाव रखा था। अब उसके हाथ में भी कुछ न रह गया था क्योंकि छेद में उसने एक ऐसा मसाला लगा दिया था कि अब कोई बन्द करने वाला मसाला उसमें रुक ही न सकता था।

दूसरे क्षण ही वह कराह कर गिर पड़ा। "अब क्या हो सकता है बन्दापरवर!"—और वह भी उसी वक्त से दिल की टपकन के कारण तड़पने लगा।

बादशाह ने उसकी हालत देखी तो उन्हें अपने ऊपर बड़ा

क्रोध आया। "मैंने कैसे सच्चे मित्र के साथ कृतघ्नता की है! आज अगर मैंने उसके साथ यह सलूक न किया होता तो इस इतनी बढ़िया इमारत में यह कज़ क्यों रह जाता, प्यारी बेगम के दिल पर पानी क्यों टपकता और क्यों मेरे दिल में टपकन होती?"

उधर उस्ताद ईसा भी अपनी करतूत पर पछता रहे थे। वह सोचते थे, 'अगर वह कुकृत्य मैंने उस दिन न किया होता तो क्यों बादशाह के दिल में टपकन शुरू होती और क्यों मैं भी उसी रोग से पीड़ित होता?'

लोगों का ख्याल है कि बादशाह शाहजहाँ कारागार के कष्टों के कारण मरे थे, लेकिन उनके मरने की असली वजह थी दिल की टपकन और मन की ग्लानि।

उस्ताद ईसा जब तक ज़िन्दा रहे बादशाह की तरह, पानी बरसते समय, जब मुमताज बेगम के दिल पर पानी टपकता, उनके दिल में भी टपकन शुरू हो जाती; और बरसते पानी में ताजमहल के बाग में कब्र के सामने बैठे छाती पीटा करते थे।

× × ×

आज भी जब बरसात होती है तो मुमताज महल के ठीक दिल पर पानी टपकता है। इस बात की सच्चाई ताज के गाइड से पूछ कर मालूम की जा सकती है। बड़े-बड़े इंजीनियर और कारीगर उस छेद को बन्द करने के लिए ढूंढ़ते हैं, सदा नाकामयाब होने की वजह से दुःखी भी रहते हैं, पर क्या किसी के उस्ताद ईसा की सी दिल की टपकन होती है!

प्रणय और पीड़ा

पिक्चर पैलेस में कोई अच्छा फ़िल्म लगा था। यशवन्त और उससे साथी पहले ही से फ़र्स्ट क्लास में जा बैठे थे। एक सज्जन दो महिलाओं के साथ आकर सामने की सीटों पर बैठ गये। एक वयस्क थी, दूसरी बालिका। बालिका का सौन्दर्य उसे आकर्षक लगा और वह कुछ शरारत करने की सोचने लगा। जब खेल ख़त्म होने को आया तो उसने अपने बढ़िया रेशमी रूमाल निकाल कर उस लड़की के उल्टे पल्ले के छोर में ऐसी सफ़ाई से बाँध दिया कि उसे पता न लगा।

खेल ख़त्म होने पर सब लोग बाहर निकले तो साथ के सज्जन ने उस बालिका को घुड़का—"यह कौन सा फ़ैशन पीछे रूमाल बाँधने का?"

"कहाँ"—बालिका ने चौंककर कहा और उसने देखा कि एक बहुत ही बढ़िया रेशमी रूमाल उसके पल्ले से गाँठ बधा लटका हुआ है। उसने बहुत तेज़ी से उसे खोला और वह कहना ही चाहती थी कि यह उसने खुद नहीं बाँधा है किसी और ने बाँध दिया है कि उसे ख़्याल आया कि उसके भावुक पिता बहुत ही उद्विग्न हो उठेंगे। न जाने किससे झगड़ बैठें, शायद दो-चार दिन तक उनके मस्तिष्क की शान्ति भंग रहे

और फिर कभी उसे घर से निकलने की अनुमति ही न मिले! यह सब सोचकर उसने रूमाल को चुपके से रख लिया।

यशवन्त ने बालिका पर पड़ने वाली डाँट सुनी, उसकी घबड़ाहट देखी और हँसता हुआ चला आया। कुछ दिन तक उसका रूप उसे न भूला पर समय सब कुछ भुला देता है।

× × ×

रवि और यशवन्त की दोस्ती स्कूल के लड़कों के परिहास का विषय थी। दूर दूर मकान होने पर भी दोनों दिन के सोलह घंटे साथ रहकर पढ़ते, खेलते और खाते थे। रवि के पास पढाई के अधिक साधन होने पर भी वह आगे न पढ़ सका और यशवन्त कालेज और कालेज से यूनीवर्सिटी पहुँच गया। रवि को शुरू से ही अभिनय और नृत्य से शौक था। उसने एक उस्ताद से इसकी ट्रेनिङ्ग लेना शुरू की। यशवन्त और रवि की लाइनें बदल गईं; धीरे-धीरे एक दूसरे से मिलने का कम समय मिलने लगा। पर जब भी वे मिलते तो पुरानी स्मृतियाँ फिर हरी हो जातीं और वे घंटों बातें किया करते।

रवि का ब्याह है, यह थोड़े ही सम्भव है कि यशवन्त उसमें शामिल न हो। उसने रवि के आनन्द में स्वयं भी हार्दिक आनन्द मनाया। वधू के घर आ जाने पर वह उसके पास जाकर बोला—"मुँह पर से घूँघट हटाओ, मैं तुम्हारा देवर हूँ।"

वधू पढ़ी-लिखी थी, परदा कुछ विशेष पसन्द भी न था।

उसने मुँह खोल दिया और मुस्कराकर बोली—"देवर हो तो पैर छुओ।"

यशवन्त पैर छूने को कोई विशेष महत्व न देता। वधू की बात पर शायद वह 'यह लो' कह कर पैर छूने वाला था कि घूँघट के उलटते ही उसके रूप का एक धक्का सा लगा, उसका ज़रा झुका हुआ हाथ जैसा का तैसा ही रह गया फिर प्रकृतिस्थ होकर वह बोला—"नहीं।"

"नहीं"—क्या कहते हो वधू बोली, "देवर भी बनते हो और पैर नहीं छूते।"

"हाँ तुम्हारे पैर न छू सकूँगा।"—कह कर यशवन्त चलने को हुआ। जेब में रखी हुई गिन्नी जो वह उपहार देने को लाया था वैसे ही पड़ी रही।

"आखिर क्यों?"—वधू को इस युवक की विचित्रता पर आश्चर्य हुआ।

"ऐसे ही"—कहकर वह चल दिया फिर मुड़कर बोला—"मैंने तुम्हें कहीं देखा है भाभी।"

"मुझे तो ख़्याल आता नहीं।"

यशवन्त सोचता हुआ चला गया।

× × ×

सरिता अपने बाप की इकलौती बेटी है। बचपन से ही

उसने जो कुछ चाहा है उसे मिला है। अध्ययन और साहित्यिक कला से उसे प्रेम रहा है कवितायें भी की हैं जो भावुकता से ओत-प्रोत हैं पर अभी उसकी पढ़ने की लालसा पूरी भी न हुई थी कि हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करते ही उसका विवाह कर दिया गया ऐसे पति से जिसे इसी परीक्षा को पास करने में लोहे लग गये थे। जीवन में प्रथम बार सरिता ने जो कुछ कामना की थी वह पूर्ण न हुई। उसने अपने पति को जो चित्र अपनी कल्पना में बना रखा था, वह एक उच्च शिक्षा प्राप्त साहित्यिक का था। यों रवि इतना सुन्दर था कि उसे सकड़ों में एक कहा जा सकता था, शायद सरिता इसी को देख-कर धोखा खा गई थी और इस सम्बन्ध के विरुद्ध कुछ न कह पाई थी, पर विवाह करने के पश्चात उसे मालूम हुआ कि उसकी और उसके पति की रुचि में कितना अन्तर है। रवि को पुस्तकों से यहाँ तक कहा जा सकता है कि चिढ़ है। हाई स्कूल की परीक्षा देने के बाद शायद ही कोई पुस्तक उसने पूरी पढ़ी हो और सरिता बिना पुस्तकों के जीवित नहीं रह सकती। रवि को दिन-भर नृत्य की ही धुन रहती है या तो वह इसका अभ्यास करता रहता है या बोल याद करता है, यदि यह न करे तो अपने प्रतिद्वन्दियों के सामने उसे नीचा देखना पड़े। सरिता के सिर में दिन भर थो, थुङंग, हग, दन, तक, गद, गिन थेई सुनते-सुनते दर्द होने लगता है। यों संगीत-कला की वह विरोधी नहीं है स्वयं काफी अच्छा गाती है पर इसका

एकदम तपेदिक हो जाना उसे बर्दाश्त नहीं है। इस वैषम्य का फल यह हुआ है कि भारतीय विवाहों में विवाह के बाद जिस प्रेम की नींव पड़ती है वह पड़ने के पहले ही विकर्षण उत्पन्न हो गया है।

शाम का समय अकेले आदमी का कटना मुश्किल हो जाता है। सरिता मन मारे बैठी हुई है, रवि नृत्य की ट्रेनिंग देने गया है। वह बैठी बैठी कुढ़ रही है कि आ गया यशवन्त।

"ओ हो भाभी, क्या मामला क्या है! यह तुम्हारे मुख पर आड़ी तिरछी रेखायें कैसी देख रहा हूँ। मैं तो आया था कि चलूँ रवि से कुछ गप ही लड़ाऊँगा, और यहाँ देखता हूँ कि उसकी कमलिनी वियोग में कुम्हलाई जा रही है।"

सरिता उसका मुँह ही ताकती रह गई, कैसा मुखर है यशवन्त। उसके आते ही जैसे कमरे का गर्द-गुबार सब साफ़ हो गया, एक ताज़गी सी वह अपने साथ लाया मालूम होता है।

"नहीं बोलना है हमसे, तो लो हम यह चले" कह कर यशवन्त पलटता हुआ दिखलाई दिया।

"आपकी भी क्या बातें होती हैं!"—सरिता मुस्कराकर बोली, "आपसे क्यों न बोलूँगी आख़िर?"

यशवन्त सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गया—"चलिये, मोहर्रम तो तुम्हारा ख़त्म हुआ" कहता हुआ वह हँस पड़ा—"बड़ी देर

में मुँह पर (लाइट) रोशनी आई है, अभी तक शेड (अन्धकार) की कालिमा) ही शेड था।"

सरिता फिर हँस पड़ी - "खूब बातें करना आती हैं आपको।"

"आप, आप, आप, मैं तुम्हारा कुछ जेठ ससुर नहीं हूँ भाभी, और मुझे यह 'आप' वाला सम्बोधन सदैव दूर रखने वाला ही मालूम होता है।"

"बिल्कुल ठीक समझा है आपने"—कहकर सरिता मुस्कराई, "मैं स्वयं इसका प्रयोग इसी विचार से करती हूँ।"

"यानी नैकट्य स्थापित न हो जाय इस भय से।"

"जी हाँ।"

"क्यों क्या डर लगता है?"

"सच तो यही है।"—कहती हुई सरिता हँसने लगी।

"आख़िर ऐसी क्या बात है हम लोगों में?"

"स्त्री जाति के शत्रु हो तुम लोग, उसके हृदय को बिना सोचे-समझे कुचला करते हो।"

"ऐसे किसी भय की आशंका मुझसे तुम्हें न होनी चाहिये।"

"आख़िर क्यों।"

"क्योंकि न मुझे तुम्हारा हृदय दान मिलेगा और न मैं उसे...क्या कहूँ आगे।"

"आपसे पार पाना कठिन है"—कह कर सरिता हँसने लगी। "अच्छा लाइये देखूँ यह हाथ में क्या है।"

"यशवन्त के हाथ में एक मासिक पत्रिका की प्रति थी, वह उसने सरिता की ओर बढ़ा दी।

सरिता पत्रिका के पन्ने उलटने लगी, एक कहानी पर निगाह टिकी—"यह यशवन्त कुमार कौन हैं?"

"आपका सेवक"—यशवन्त ने कहा।

सरिता वह कहानी पढ़ने लगी।

"और मैं बैठे-बैठे तुम्हारा मुंह ताकूँ!"—यशवन्त ने कहा।

"क्यों क्या बुरा सौदा है?"

"घाटा न हो, पर अनुचित है न।"

"देखती हूँ अच्छे बुरे के विषय में तुम काफ़ी सतर्क हो।"

सरिता ने कहानी पढ़कर रख दी।

"क्यों कैसी रही?"—यशवन्त ने पूछा।

"बहुत अच्छी, अगर कोई कमज़ोरी है तो यही।"

"क्या?

तुम लोगों को स्त्रियों के हृदय का ज्ञान नहीं हो पाता और स्त्रियों को लाये बिना तुम लोगों को कहानियाँ सरस ही नहीं मालूम पड़तीं।"

तुम्हारी यह बात मैं मानता हूँ भाभी पर मुश्किल तो यह है कि तुम लोग भी इतनी रहस्यमयी बनी रहना चाहती हो कि कभी हम लोगों के सामने अपना हृदय खोलना नहीं चाहतीं, फिर हम लोग जाने तो कैसे जानें बस कल्पना से ही काम लेते

हैं। मैं तुमसे ही पूछूँ कि बताओ तुमने कभी किसी से प्रेम किया है तो तुम "नहीं नहीं, कहकर सती, पार्वती, सब से आगे बढ़ जाओगी।"

"और तुम्हें इस विषय में सन्देह है कि मैं सती पार्वती हूँ।"

"सन्देह की बात नहीं है और फिर यह भी है कि मैं यह नहीं समझता कि प्रेम करने से कोई पतित होता है।"

"क्या बताऊँ मैंने कभी किसी से प्रेम किया होता तो अवश्य तुम्हें बता देती, यशवन्त बाबू, जिससे तुम्हें स्त्री-हृदय का ज्ञान हो जाता, पर मुझे दुख है कि मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकती।"

"मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं कि तुम्हारे हृदय में किसी के प्रति कभी आकर्षण नहीं उत्पन्न हुआ, न कभी किसी के विषय में तुमने सोचा।"

"अच्छा अगर आप इतने को ही प्रेम मान लेते हैं और इससे सन्तुष्ट हो जाते हैं तो सुनिये, एक बार एक व्यक्ति के विषय में मुझे कुछ सोचना पड़ा है। वह कौन था, यह मैं नहीं जानती, सबसे आश्चर्य की बात यह है कि मैंने उसकी शक्ल भी नहीं देखी, फिर भी उस व्यक्ति के प्रति मेरे हृदय में कुछ मोह उत्पन्न हुआ था। एक बार अपने माता-पिता के साथ मैं सिनेमा गई, पीछे कुछ कालेज के विद्यार्थी बैठे हुये अपनी आदत के माफ़िक हुल्लड़ मचा रहे थे, मैंने जान-बूझ कर उस

ओर दृष्टि न डाली। सिनेमा से निकली ही थी कि पिता जी ने डाट बताई—"यह पीछे रूमाल बाँधने का कौन सा फ़ैशन है!" मैं घबड़ा गई, घूम कर देखती हूँ तो उल्टे पल्ले के छोर में एक रूमाल बँधा हुआ है। मेरे दिमाग़ में आ गया कि यह उन्हीं विद्यार्थियों में से किसी की शरारत है, पर मैंने पिता जी से कुछ न कहा, वर्ना वे बहुत गड़बड़ मचाते। रूमाल खोल कर रख लिया। मन ही मन उस वक्त रूमाल बाँधने वाले पर बड़ा क्रोध आया कि उसने मुझे कैसी परिस्थिति में डाल दिया था पर धीरे-धीरे उसके अल्हड़पन पर मोह उत्पन्न हो गया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उस अज्ञात व्यक्ति के हृदय में मेरे प्रति कुछ भाव ज़रूर उठे होंगे तभी तो उसने अपना बढ़िया रूमाल मुझे उपहार-रूप में दे डाला। इसी चीज़ को लेकर मेरा मन कई दिन तक उलझा रहा और मेरी यह इच्छा हुई कि मैं उसे देख पाती, पर इसका कोई चारा न था क्योंकि शायद वह शरारती रूमाल बाँधकर ही मुझे भूल गया था। धीरे-धीरे मैं भी अपने मन को यह कह कर सन्तोष देने लगी कि शायद वह उन ख़र्चीले रईस लड़कों में हो जिनके लिये तीन-चार रुपये का रूमाल कोई विशेष मूल्य न रखता हो और उसने सिर्फ़ चुहल-बाज़ी के लिये ही यह काम किया हो। यही सोच कर मैं उसे भूलने का प्रयत्न करने लगी। निश्चय रूप से यह नहीं कहा जा सकता था कि उसके हृदय में क्या भावना थी पर जो कुछ मैंने सोचा-विचारा वह आपको बता दिया। यही मेरा प्रथम और

अन्तिम कल्पना में प्रेम था। अब तो आपको शिकायत नहीं है कि हम लोग आपके सामने अपना हृदय नहीं खोलतीं।

यशवन्त क्या कहता, उसके नेत्रों के सामने वह दो साल पहिले का दृश्य चित्रपट की भाँति चल रहा था, और अब उसे आश्चर्य हो रहा था कि वह सरिता को पहिचान क्यों न सका। इतना बढ़िया मसाला पाकर भी वह इस विषय में सरिता से कुछ भी परिहास न कर सका। वह गम्भीर हो गया था। उसने कहा—"भाभी मैं एक बात तुमसे कहूँ, उस व्यक्ति ने रूमाल परिहास के ही लिये नहीं बाँधा होगा।" यह कह कर वह उठ कर चल दिया।

सरिता उसके साथ-साथ दरवाज़े तक आई—"ऐसा कैसे कह सकते हैं आप?" उसने प्रश्न किया।

"अगर आपका दावा है कि पुरुष स्त्रियों के हृदय को नहीं समझते तो मेरा भी दावा है कि पुरुषों के हृदय की बात पुरुष ही जान सकते हैं।"

× × ×

यशवन्त अब लगभग रोज़ ही रवि के यहाँ जाता है, यद्यपि रवि से उसकी भेंट कम होती है। जब वह मिल जाता है तब सरिता और वे दोनों बैठकर बातचीत करते या घूमने निकल जाते हैं। कभी रवि के न होने पर भी सरिता और यशवन्त ही घूमने चले जाते हैं। इसका न रवि ही विरोध करता है और

न उसके परिवार का कोई व्यक्ति क्योंकि वे लोग काफ़ी फ़ारवर्ड (उदार विचार के) हैं और समझते हैं कि सरिता अकेले बैठ भी कहाँ तक सकती है जब कि रवि को अपने को काम से फ़ुर्सत नहीं मिलती है।

यशवन्त और सरिता का नैकट्य बढ़ता जाता है। उनमें बेतकल्लुफ़ी भी ख़ूब हो गई है। यह रवि देखता है पर उसके हृदय में इस विषय में कभी सन्देहात्मक भाव उठते हैं या नहीं यह कोई नहीं जानता। कम से कम उसने कभी कोई बात इस प्रकार की प्रगट नहीं की है। इधर कुछ दिन से उसकी कलकत्ते की एक फ़िल्म कम्पनी से नौकरी की बातचीतें चल रही थी। कल उसका एप्वाइन्टमेन्ट लेटर (नियुक्ति पत्र) आ गया है और वह वहाँ जाने की तैयारी कर रहा है।

सरिता इस बात से काफ़ी उदास हो गई है। कल से उसने ठीक-ठीक भोजन भी नहीं किया है। रवि ज़रा भावुक कम है उसने सरिता को समझाया—"देखो सरिता, यदि तुम इसलिए उदास हो कि मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगा तो यह बहुत छोटी बात हुई, क्योंकि प्रेम तो पास न होने पर भी हो सकता है। ऐसा दुख तो वे ही लोग किया करते हैं जो शारीरिक सुख के अभिलाषी होते हैं और यह कोई ऊँचा आदर्श नहीं है। यशवन्त से मैं कह जाऊँगा कि वह तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट न होने दे और तुम्हारा मनोरञ्जन करने का प्रयत्न करता रहे।"

न जाने क्यों जिस समय रवि यह बात कह रहा था सरिता

की यह इच्छा हुई कि वह उसके मुँह पर के भाव के पढ़ने की चेष्टा करे और उसने देखा भी पर रवि को बिल्कुल शान्त, व्यंग अथवा सन्देहहीन पाया।

रवि कलकत्ते चला गया।

× × ×

नित्य की भाँति यशवन्त और सरिता आज भी घूमने निकले हैं, पर आज का वातावरण ऐसा सुन्दर है, गुदगुदाने वाली ठंडी हवा और चाँदनी, कि दोनों खूब ही प्रसन्न हो उठे हैं। चलते-चलते वे काफ़ी दूर निर्जन की तरफ़ निकल गये हैं। यशवन्त ने कहा—"भाभी, मैं अगर दौड़ूँ तो तुम मुझे पकड़ सकती हो?"

"यह तो दौड़कर ही जाना जा सकता है"— सरिता ने कहा।

"तो मैं भागूँ, तुम पकड़ोगी?"

चाँदनी में दौड़ने की किसकी इच्छा न हो आयेगी, सरिता बोली—"वही करो जो स्वाभाविक है, मैं भागूँ तुम पकड़ो।"

खेल शुरू हो गया। यशवन्त ने जितना समझा था, सरिता उससे तेज़ निकली। यों दौड़ता वह भी तेज़ था, पर कसरती बदन था, बैठकों ने पैर भारी कर दिये थे। सामने उड़ी जाने वाली चिड़िया की तरह भागती सरिता को देखकर यशवन्त को

शीघ्र ही पता चल गया कि उसे पकड़ना उसके मान की बात नहीं है। फिर भी उसने हार न मानी, भागता ही रहा, एक बार कुछ पास आने पर उसने कहा—"मैं तुम्हें नहीं पा सकता भाभी।"

सरिता बहुत प्रसन्न थी, हँसती हुई बोली "मुझे पाने का अधिकार ही नहीं है तुम्हें।"

उसने एक तिरछा मोड़ लिया और वह जल्द ही यशवन्त से काफ़ी दूर हो गई। काफ़ी दौड़ने के कारण उसकी साँस फूलने लगी तो वह एक पेड़ के नीचे के अँधेरे में छिप गई। पीछे दौड़ते हुये यशवन्त को उस स्थान पर आते ही उसके हाँफने का शब्द सुनाई दे गया। उसने दौड़कर उसे पकड़ लिया और बोला—"मुझे मेरा हक़ मिल गया।"

सरिता ने सरल स्वभाव से ही अपने को छुड़ाने का प्रयत्न किया तो पाया कि यशवन्त उसे काफ़ी ज़ोर से पकड़े हुये है। उसने अपना बदन ढीला किया और झटका देकर एकदम निकल भागी, दूर जाकर बोली—"यह अनधिकार चेष्टा है, दूसरे की चीज़ हज़म करना हँसी खेल नहीं है लल्ला।"

सरिता के इन शब्दों ने उसे और भी उत्तेजित कर दिया। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे सरिता उसकी शक्ति को चुनौती दे रही है। इस बार वह बहुत तेज़ दौड़ा और उसने शीघ्र ही फिर उसी प्रकार सरिता को अपनी बाहुओं में लपेट लिया।

अब सरिता सजग हुई, उसने कुछ बिगड़ कर कहा,—"छोड़ दो, यशवन्त बाबू यह अनुचित है।"

"संसार में जहाँ उचित है वहाँ अनुचित भी है"—कहकर यशवन्त ने अपना बन्धन और भी गाढ़ा किया।

"आख़िर तुम चाहते क्या हो?" सरिता तेज़ होकर बोली।

"मैं सम्पूर्ण तुम्हें चाहता हूँ सरिता।"

"मैं और मेरा शरीर दो अलग-अलग चीज़ें हैं।"

"लेकिन मैं शरीर से अधिक तुम्हें और कहाँ पा सकता हूँ!"

"यदि हृदय हो तो उसमें सब कुछ पाया जा सकता है।"

"यह कपोल कल्पनायें हैं इन पर मेरा विश्वास नहीं, तुम यही समझ लो कि मैं तुम्हारे शरीर को ही चाहता हूँ।"

"तो वह तुम्हें मेरे जीवित रहते न मिलेगा"—कहकर सरिता छूटने का भरसक प्रयत्न करने लगी यहाँ तक कि उसने एक जगह यशवन्त के हाथ में काट भी खाया। यशवन्त को उत्तेजना में भले-बुरे का ज्ञान न रहा था। इस पर वह क्रोधित हो उठा और अपने शक्तिशाली हाथ से उसने सरिता की गर्दन दबाते हुये कहा—"और जब यह मुझे न मिलेगा तो मैं इसे किसी और के लिये रहने भी न दूँगा।"

सरिता ने कहा—"तुम अपने आप को मेरा प्रेमी बताते हो, मेरे लिये मौत का यह सौदा बुरा न होगा।"

अनायास ही यशवन्त का हाथ कुछ ज़ोर से दब गया और सरिता एक चीख़ मार कर बेहोश होकर गिर पड़ी। सरिता की बेहोशी यशवन्त के होश लेकर आई। वह सोचने लगा यह उसने क्या किया, सरिता की जान ही ले ली। क्या अब वह ख़ूनी है! परिस्थिति की गंभीरता अब उसकी समझ में आने लगी। वह वहीं ज़मीन पर बैठ गया और सिर पर हाथ रखकर सोचने लगा। थोड़ी देर में बुद्धि लौटी सो उसने सरिता की नाक पर हाथ रखकर देखा। यह मालूम होते ही कि अभी साँस चल रही है उसे ख़ुशी हुई और पानी की तलाश में दौड़ पड़ा। कुछ दूर पर एक गड्ढे में उसे पानी दिखाई दिया, उसने अपना रूमाल उसमें डुबोया और सरिता के मुँह पर लाकर पानी निचोड़ा। सरिता कुछ कुनमुनाई। यशवन्त इस बार अपना कोट पानी में डुबा लाया और सरिता के सिर पर थपथपाने लगा। थोड़ी देर में सरिता ने अपनी आँखें खोलीं। कुछ देर तक वह वैसी ही पड़ी रही फिर यशवन्त की बाँह का सहारा लेकर उसके बदन के सहारे बैठ गई। यशवन्त अब रो रहा था, उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होकर सरिता के वक्षस्थल पर गिर रही थी। काफ़ी देर में उसके अश्रु-प्रवाह का वेग कम हुआ तब सरिता ने अपनी साड़ी के पल्ले से उसके आँसू पोंछ दिये और उसका सहारा लेकर चलने को तैयार हो गई।

यशवन्त उस दिन के बाद सरिता के पास न जा सका।

इन दिनों उसे मालूम भी न हुआ कि वह कहाँ है। आज उसे डाक से एक पत्र मिला है :—

यशवन्त बाबू,

फिर तुम्हारे दर्शन न हो सके। मैं समझती हूँ तुम मेरे सामने आते शर्माते होगे, परन्तु तुम मेरे सामने अपराधी नहीं हो, कम से कम मैं ऐसा नहीं समझती, होओ भी तो मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ। मैं कलकत्ते जा रही हूँ, तुम्हें स्टेशन पर ही पत्र छोड़ा है। इस घटना को विशेष महत्व न देना।

तुम्हारी,

सरिता

× × ×

दो साल बाद:—

शहर के एक पिक्चर पैलेस में फ़िल्म आया है सरिता उसमें काम कर रही है। यशवन्त ने भी वह चित्रपट देखा है और उसके रूप और अभिनय ने फिर उसके हृदय में सरिता को देखने की इच्छा जाग्रत कर दी है। /

यशवन्त जब कलकत्ते रवि के यहाँ पहुँचा तो घर पर सिर्फ़ सरिता ही मिली। उसने देखा वह गले में वही पाँच बरस पहले वाला रूमाल बाँधे हुये है। यशवन्त को देखकर उसकी आँखों में चमक आ गई। उसके हाथ से अटैची लेकर उसने एक किनारे

रख दी और उसे आरामकुर्सी पर बैठकर निकट ही बैठ गई। "मैं बीमार हूँ यशवन्त बाबू, मेरे गले में दर्द रहता है।"—उसने कहा।

"शायद उसी दिन से?" यशवन्त ने पूछा।

मुस्कराते हुये सरिता ने सिर हिला दिया।

यशवन्त ने कहा—"मैंने तुमसे बताया नहीं था सरिता, यह रूमाल मैंने ही सिनेमा में तुम्हारे बाँधा था।

सरिता को जैसे कुछ आश्चर्य नहीं हुआ, उसने कहा—"न जाने क्यों बहुत दिनों से मुझे भी यही विश्वास सा हो चला था। अब मैं भी तुमसे कुछ छिपाऊँगी नहीं, यशवन्त बाबू मैंने भी तुमसे प्रेम किया है और मुझे विश्वास हो चला है कि मेरा प्रेम पाप नहीं है, पर मैं शारीरिक संसर्ग को प्रेम का अंग नहीं समझती। अपने प्रेमी का मैं पशु बनना स्वीकार नहीं कर सकती, इसलिये मैं तुमसे दूर हो गई। एक बड़ी विचित्र बात तुम्हें सुनाऊँ, तुम शायद सुनकर हँसो भी, उस दिन से अक्सर मेरी गर्दन में दर्द होने लगता है, न जाने कितनी डाक्टरी दवायें फ़ेल हो गईं, कुछ न हुआ। एक दिन यह रूमाल निकाल कर मैंने गले में बाँध लिया। दर्द बन्द हो गया। मुझे विश्वास हो गया कि रूमाल और दर्द दोनों ही मेरे प्रेमी के स्मृति-चिह्न हैं और इसी कारण एक की उपस्थिति में दूसरे की आवश्यकता नहीं रहती। जब तक रूमाल बाँधे रहती हूँ दर्द नहीं होता और

जब रूमाल रख देती हूँ तो दर्द शुरू हो जाता है। सच तो यह है यशवन्त कि मेरी नस-नस में तुम्हारा प्रेम बस गया है और यह सब उसी का विकार है। पर तुम मुझसे शारीरिक नैकट्य न चाहो। वह संभय नहीं, वह घृणा की वस्तु है।

अपनी बात के प्रवाह में बही जाती सरिता ने यह देखने को मुँह उठाया कि उसकी बातों पर यशवन्त को विश्वास हो रहा है अथवा नहीं तो उसने देखा कि यशवन्त कमरे से बाहर जा रहा है और वह बढ़ता ही चला जा रहा है।

यशवन्त उसी वक्त कलकत्ते से चला आया।

मुसाफ़िर

(१)

चाँदनी रात में सारी प्रकृति दूध से नहा रही थी और गोमती का जल कल कल करके बह रहा था। ऐसे रमणीय समय में दो युवक गोमती के जल में पैर डाले बैठे थे। सामने स्वप्न-प्राचीर की भाँति खड़ा छतरमञ्ज़िल अपने पुराने वैभव की याद दिला रहा था।

शिला पर बैठे हुए एक दूसरे के कन्धे पर बहुत प्रेम से हाथ रखे हुए उन दोनों ने कहा—'हम दोनों चन्द्रदेव को, इस रात्रि में हमारे स्वर में स्वर मिलाती हुई प्रकृति को और गोमती के एक एक बूंद जल को साक्षी करके कहते हैं कि हम लोग आजीवन कभी अलग न होंगे, अपने दुःख-सुख को एक दूसरे से कभी न छिपाएँगे और अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु देकर एक दूसरे की आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे। चन्द्रदेव ने अपनी चाँदनी और चटखाकर, गोमती ने अपने जल के कल कल को और बढ़ाकर और प्रकृति ने अपना गुञ्जन उनके स्वर में मिलाकर उनकी प्रतिज्ञा की पुष्टि की।

(२)

उमेश से दो दिन ही अलग रहने पर जितेन्द्र का मुँह पुराने मरीज़ों की भाँति सूख गया। कोलेज हॉस्टल में उमेश के कमरे के सामने बैठा वह उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। इतने में उसने पीछे से आकर दोनों हाथ कन्धे पर रख दिए, 'यहाँ अकेले बैठे क्या कर रहे हो जितेन्द्र ?'

प्रश्नकर्ता का स्वर सुनते ही वह बोल उठा, 'खूब मज़ा करो, तुम्हें किसी की आन्तरिक व्यथा का हाल क्या मालूम! तिलक की मिठाई खानेवालों के कान में रोने की आवाज़ नहीं पड़ा करती।' इतना कहकर उसने अपनी जल से भरी दोनों आँखें उमेश के मुख पर गड़ा दीं।

उमेश एक गौरवर्ण, छरहरे बदन का, मंझोले कद का सुन्दर युवक है। आँखों के पास चश्मे की श्यामता छा गई है, परन्तु उनमें एक चमक है, मन को आकर्षित कर लेने की शक्ति है, हृदय की थाह लेने की ताक़त है और है दृढ़ता का आभास। जितेन्द्र से और सटकर उसको अपनी भुजाओं में भरकर बोला, मैं तुमसे कहकर गया था कि मंगल को सवा पाँच बजे की गाड़ी से लौटूँगा सो आगया। स्टेशन पर तक तो तुम आए नहीं और यहाँ लड़कियों के ऐसे आँसू भरे बैठे हो। चलो नीचे सामान उठवाओ नहीं ताँगे वाला चिल्लाने लगेगा। मिठाई तुम्हारे लिए भी लाया हूँ, घबड़ाते क्यों हो ?'

उसके अप्रसन्नता के बादलों को आँधी की भाँति उड़ाकर वह उसे नीचे ठेलता हुआ ले चला। थोड़ी देर में सामान कमरे में रखा गया। सामान रखकर वह फिर बुक-केस के पास शून्य-सा खड़ा हो गया। उमेश ने उसे चारपाई पर ज़बर्दस्ती बैठा दिया और डब्बे में से लड्डू निकालकर उसके मुँह में ठूँसता हुआ बोला, 'जीतू, बरात की बहुत जल्दी तैयारी करो।'

जितेन्द्र—'इम्तहान ख़त्म हो जाने दो, सब दो रोज़ में ठीक कर लेंगे'।

उमेश—'नहीं इम्तहान के बाद नहीं। आज ११ फ़रवरी है, २३ को यहाँ से चलना होगा।'

'हैं! इतनी भी क्या जल्दी थी? इम्तहान तो हो लेने दिया होता।'

उमेश—'इसमें मेरा क्या क़सूर है, भाई? पंडितों ने कहा इस लगन के बाद इस साल ब्याह हो नहीं बनता है, फिर क्या था, घरवालों की बन आई।

(३)

मज़बूत काठी का लम्बा-सा वह युवक है। नाम है जितेन्द्र। बचपन ही में माँ-बाप मर गए थे, तबसे न जाने कितने शहरों में रहा है; आज यहाँ, कल वहाँ। एक शहर में रहेगा तो एक मकान में न रहेगा, आज इस मुहल्ले में है, कल उस मुहल्ले में। स्वभाव का कुछ ऐसा मिलनसार है कि चार दिन में ही लोग

उसे अपना आत्मीय समझने लगते हैं। पास-पड़ोस की स्त्रियाँ उससे स्नेह करती और वृद्धाएं उसे पुत्र की भाँति देखती हैं। वे व्याकुल रहती हैं कि उसने ठीक भोजन किया या नहीं, क्यों कि उन्हें मालूम है कि उसे यह बातें भी याद नहीं रहतीं।

उस दिन दोपहर में वह एक पुस्तक बग़ल में दबाए गली से निकला। चिक के अन्दर से खन्ना बाबू की स्त्री ने पुकारा—'ए लाला, यहाँ आओ।'

चिक उठाकर अन्दर पहुँचा—'क्या है भाभी ?'

'देखो तुम्हारा कुर्ता कितना फट गया है और तुम्हें इसकी परवाह ही नहीं है। लाओ सी दूँ, नहीं और बढ़ जाएगा।'

इतने पर भी उसका मन किसी से नहीं अटकता। लेकिन अब उमेश ने उसे बाँध कर रखा है। दोनों ने साथ साथ इन्टर पास किया और अब बी० ए० का इम्तहान देंगे।

उमेश उसकी यह सब भावभंगी दूर कर देना चाहता है। यह फ़िलासफ़रपना उसे पसन्द नहीं। वह चाहता है कि जितेन्द्र की मुसाफ़िरी बन्द हो जाय। सीधे-सीधे ब्याह शादी करे, नौकरी करे, घर बसावे, किसी एक का किसी एक जगह का होकर रहे; लेकिन यह सब जितेन्द्र के लिए बड़ा मुश्किल है।

जितेन्द्र उन लड़कों में है जिनका आदर्श बहुत ऊँचा होता है और किसी छोटी बात के बारे में सोचते ही नहीं। जितेन्द्र ने अपने भविष्य जीवन के कुछ चित्र खींचे हैं वे बड़े ही सुन्दर

रंगों द्वारा चित्रित हैं। नौकरी वह करना चाहता है तो बहुत बड़ी, रहने को बड़ा भारी बँगला चाहिए, मोटर भी, नौकर-चाकर भी। इसीलिए अब तक, जब कि उसके बहुत से साथी चालीस-पैंतालीस की नौकरी पाकर अपने भाग्य को धन्य समझ चुके हैं, वह उनपर दया की दृष्टि से देखता हुआ आगे पढ़ता चला आया है।

सैकड़ों ही व्याह के प्रस्ताव उसके पास आए हैं। किसी ने उसे अपना रुपया-पैसा दिखलाया, किसी ने बड़ी-सी कोठी, किसी ने नौकरी दिलाने का लालच दिखाया और किसी ने अपनी लड़की की तारीफ़ करके ही अपना कर्तव्य-पालन सा किया। लेकिन जितेन्द्र को जिस हीरे की चाह थी वह उसे इन कंकड़ों के बीच में दिखाई न दिया। वास्तव में वह अपने इस हीरे की खोज भी कर चुका था और उसे प्राप्त करना उसके जीवन के महान् उद्देश्यों में से एक था। उसे दृढ़ आशा थी कि बी० ए० पास कर के उसकी इस अभिलाषा की पूर्ति अवश्य हो जायगी।

(४)

अब उमेश का व्याह है। जितेन्द्र और उमेश सामान वग़ैरह ख़रीदकर आज जाएँगे। होस्टल के लड़कों में इसी बात की चर्चा है कि फ़ाइनल इम्तहान के पहले यह व्याह ख़ूब रचाया जा रहा है। इस बात पर और भी क़हक़हे उड़ रहे हैं

कि जितेन्द्र भी अपनी पढ़ाई पर पानी फेरने जा रहा है। लेकिन इस सब के बारे में उमेश से कोई चाहे जो कुछ कह ले, जितेन्द्र से इस विषय में बात करने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती। जानते हैं वह एक दम उबल पड़ेगा तो पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जायगा।

× × ×

व्याह सकुशल समाप्त हो गया। शिक्षित होने पर भी विदा के पश्चात् बहू रेल पर सवार होने के लिए मधुर चाल से आई तो उसमें माता-पिता के वियोग के फल-स्वरूप जो रुदन मिला था, वह जितेन्द्र को क़ाफ़ी वैसा ही मालूम हुआ जैसी कुशल कलाकार के नृत्य के साथ मधुर गायन की ध्वनि। उस स्वर में अपने हृदय की तंत्री को कुछ मिलता हुआ पाकर जितेन्द्र एक बार काँप उठा।

गाड़ी चलती रही। रुदन का ऊँ-ऊँ शब्द पहले गाड़ी के छुक-छुक शब्द के होने पर भी सुनाई देता रहा फिर धीरे-धीरे बन्द हो गया। उमेश बहुत थका होने के कारण ऊँघता ऊँघता जितेन्द्र की गोद में लुढ़क पड़ा। हाथ पैर समेटकर जितेन्द्र की गोद में उसने अपने आराम से लेटने की जगह ख़ूब ठीक बनाली थी। जितेन्द्र बैठा हुआ हिन्दुस्तान टाइम्स पढ़ रहा था अख़बार पर से दृष्टि हटाकर एक बार उसने स्नेह-पूर्वक उमेश की ओर देखा, फिर बड़ी सावधानी से सामने के सन्दूक़

पर रखा हुआ चादरा खींचा और उसके साथ में गिरती हुई पुस्तक को दूसरे हाथ में ऐसी सतर्कता से ले लिया कि उमेश की नींद में ख़लल न पड़े। चादरे से उमेश का एक-एक अंग ढक कर उस पुस्तक के पन्ने पलटने लगा।

बहू को यह सब घूँघट की ओट होने पर भी दिखलाई पड़ा—जितेन्द्र की उमेश पर स्नेह-दृष्टि, चादरा खींचने में उसकी सतर्कता और जितेन्द्र का धीरे धीरे स्नेह-पूर्वक चादरा उढ़ाना। बहू की विचार-धारा जितेन्द्र पर से हट-कर अपने अल्हड़ पति की ओर मुड़नेवाली ही थी कि कैसे आराम से पड़े हुए हैं, इस बात की ज़रा भी फ़िकर नहीं है कि किसी के पैरों में दर्द होगा कि नहीं। कितनी देर हो गई, और उन्हें देखो जब से बैठे हैं ज़रा हिले-डुले तक नहीं, कि जितेन्द्र ने धीमे स्वर से कहा—'लीजिए यह किताब', और पुस्तकवाला हाथ बढ़ा दिया। बहू की विचार धारा टूट गई। पुस्तकवाला हाथ बढ़ाया, तो घूँघट ऊँचा हो गया। जितेन्द्र की आँख बहू के मुँह पर पड़ गई। जल्दी से किताब हाथ में देकर उससे अपने मुँह को अख़बार की ओट में कर लिया। उसका हृदय कुछ ज़ोर से धड़कने लगा था। जितेन्द्र ने उस धड़कन में सुना वह प्रतिमा वैसी ही नहीं, वही थी जिसे उसने अपने मन में स्थापित किया था।

एक स्टेशन पर गाड़ी रुकी। बारात के बाकी और लोग

दूसरे डिब्बे में बैठे थे। नौकर आकर बोला, 'भैया, अगला स्टेशन कानपुर है, वहाँ गाड़ी बदलने के लिए उतरना है।

कानपुर में सामान मुसाफ़िरख़ाने में रखा गया।

उमेश नहाकर लौटा तो जितेन्द्र न दिखाई दिया। चाचा से पूछा, उन्होंने कहा, 'मैंने तो नहीं देखा'। नौकर ने पुल की तरफ़ हाथ उठाकर कहा, 'इधर जा रहे थे'। उमेश और कई आदमी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान हो गए। क़रीब डेढ़ घन्टा हो गया, जिस गाड़ी से जाना था वह भी छूट गई। उमेश का मन घबड़ा रहा था—मालूम नहीं कहाँ चला गया? क्यों चला गया?

इतने में देखा—बुकिंग आफ़िस की तौलने की मशीन पर वह दीवाल की ओर मुँह किए हुए बैठा है। दौड़ता हुआ जाकर वह उसके गले से लिपट गया। 'तुमने मुझे आज कितना परेशान किया! इतने में जितेन्द्र के मुँह की ओर दृष्टि पड़ी तो उसका कलेजा धक से हो गया। वह कितना अधिक विचारशील और गम्भीर दीख रहा था और संसार की सारी करुणा जैसे उसके मुख पर एकत्रित हो गई थी।

उमेश इतना अधिक बातूनी और हसोड़ होने पर भी पलक मारते ही बहुत कुछ समझ गया। उसने जितेन्द्र का हाथ पकड़ लिया और मुसाफ़िरख़ाने की तरफ़ चला। रास्ते में जितेन्द्र ने अपने मुख पर का भाव बदलने का काफ़ी प्रयत्न किया!

मुसाफ़िरख़ाने में आकर उमेश ने बारात के लोगों को यही

समझा दिया कि इनके एक सम्बन्धी मिल गए थे। वे स्टेशन के उधर क्वार्टर्स में रहते है। उन्होंने इन्हें अब तक नहीं आने दिया !

बारात उमेश के घर पहुँची। इस बीच में उमेश बड़ी सतर्क दृष्टि जितेन्द्र पर रक्खे रहा, न मालूम उसे किस बात की शंका थी।

उस दिन रात को उमेश और जितेन्द्र बाहर के बरामदे में सो रहे थे। उमेश ने दो-चार बार जितेन्द्र को अपनी खाट पर बैठे हुए देखा। वह उसके हृदय की व्यथा को कुछ-कुछ समझ रहा था, लेकिन ठीक लक्ष्य उसे अब तक न मिला था। वह चाहता था कि जितेन्द्र को सान्त्वना दे, लेकिन किन शब्दों में, यह वह नहीं जानता था।

प्रातःकाल के धुंधले प्रकाश में जिस समय उमेश को कुछ झपकी लग गई थी, जितेन्द्र फिर दबे पैर उठा और फाटक से बाहर निकलकर एक ओर चल दिया।

उमेश जिस समय दिन निकले उठा तो जितेन्द्र का कहीं पता न था। पहले दो-चार घंटे तो जितेन्द्र की खोज वहीं हुई, लेकिन जब उमेश को विश्वास हो गया कि जितेन्द्र शाहाबाद में नहीं है तो वह शाम ही की गाड़ी से लखनऊ जाने की तैयारी करने लगा।

उमेश के माता-पिता ने पहले उसे मना किया और समझाया, पर जब वह न माना तो लाचार होकर, मन ही मन

जितेन्द्र ऐसे नालायक़ मित्र को गाली देते हुए बैठ रहे। उमेश के लगभग सभी मित्रों ने उससे सहानुभूति प्रगट की और जितेन्द्र के बिना किसी सूचना दिए हुए चले जाने पर उमेश का लखनऊ जाकर उससे शीघ्र से शीघ्र मिलना ही ठीक समझा। नव वधू घर में होने पर भी बिना उससे साक्षात किए ही घर से चल देने की तैयारी करने लगा। अपने कमरे में अजब घबड़ाया हुआ सा बैठा वह सामान बाँध रहा था कि उसने कमरे के द्वार पर लज्जा और शील से संकुचित दो नेत्र पर्दे के निकट आँसुओं से भरे हुए देखे। उमेश ने देखा, फिर देखा और मन में सोचने लगा कि 'ये वियोग के दुःख-स्वरूप आँसू हैं या सहानुभूति के?" उसे इस समय सहानुभूति की ही सबसे अधिक आवश्यकता थी।

× × ×

बड़ी तेज़ी में होस्टल में सामान रख कर उमेश जितेन्द्र के क्वार्टर में पहुँचा, लेकिन वहाँ भी ताला लगा देख कर उसका कलेजा मुँह को आगया। पड़ोसियों ने ख़बर दी कि वह जब से उसके साथ गया था तब से नहीं लौटा।

उमेश ने जितेन्द्र की बहुत खोज करवाई, लेकिन स्वतन्त्र पक्षियों की भाँति दिन पर दिन उड़ते चले गए और जितेन्द्र का कुछ भी पता न चला।

× × ×

चार वर्ष बीत गए।

इस बीच में एम० ए० पास करके उमेश एक्साइज़ इन्स्पे-

क्टर होकर आगरा-चला आया है। गत चार वर्षों में उमेश पार्टियों में और शादी-विवाहों में भी सम्मिलित हुआ है, खुशी भी मनाई है, लेकिन जितेन्द्र के चले जाने के बाद एक बार भी वह दिल खोल कर न हँसा और किसी कार्य में भी उसे मानसिक आनन्द प्राप्त न हुआ।

(५)

सन् ३६ के दिसम्बर की बात है, लखनऊ की आन-बान-शान नुमायश के कारण और भी बढ़ गई थी। मुसाफ़िरों से खचाखच भरी हुई गाड़ियाँ लखनऊ की आबादी को रोज़ कितना अधिक बढ़ा देती थीं इसका अन्दाज़ा लगाना सम्भव न था। इक्के और ताँगे से लेकर तरकारी, अनाज और मकान के किराए तक बेशुमार बढ़ गए थे। होटलवालों को तो इतना फ़ायदा हो रहा था कि बड़े-बड़ों का मन होटल खोल कर बैठ जाने का करता था। लेकिन होटलों के लिए और सब सामान तो जुटाए जा सकते थे मौक़े से मकान मिलना सम्भव न था। रद्दी से रद्दी मकानवाले आजकल किराए के लिए ऐसा मुँह फैलाते थे कि देखते ही बनता था। बड़े-बड़े मकानों तक के भाग्य चेते थे। जिन पुरानी ईटों पर गारा और चूने का पलस्तर रुकना भी मुश्किल था, उन्हें सफ़ेदी से ही किसी भाँति चमका कर मकान को रहने लायक होने का सर्टीफ़िकेट दे दिया गया था।

रानीकटरे की एक गली में ३०) किराया देकर उमेश ने दस रोज़ के लिए एक मकान लिया। वह अपनी पुष्पा सहित

नुमायश देखने आया था। उस मकान में रहते हुए उसे छः-सात रोज़ हो गए थे। चौड़ी-सी एक गली थी जिसमें दिन में दो-चार आदमी तो बेशक दिखाई पड़ा करते थे, फिर भी उस गली का सूनापन और अकेलापन इससे किसी प्रकार कम न होता दिखाई पड़ता था। चारों तरफ़ लखौरी ईटों से बने हुए पुराने मकान थे जिन पर कहीं-कहीं एकआध पलस्तर का टुकड़ा दिखाई पड़ रहा था।

उमेश के मकान के सामने एक ढहा पड़ा खँडहर था जिसमें जहाँ-तहाँ भटकटैया के पेड़ उग रहे थे। खँडहर के उस पार एक छोटा-सा मकान था जिसमें सामने की खिड़की पर चिक पड़ी रहती थी। अक्सर दोपहर के समय या जब भी उमेश अख़बार या पुस्तक पढ़ते पढ़ते उकता कर अपनी खिड़की के बाहर दृष्टि डालता तो उसे वह सामने का मकान ही दीख पड़ता था, जिसको खिड़की पर चिक पड़ी हुई थी। उस मकान में से सिवाय एक काले नौकर के और कोई आता जाता दिखाई न देता था। वह भी बड़ी जल्दी में और परेशान सा दीख पड़ता था। हाँ, कभी-कभी ज़ोर ज़ोर से खाँसी की आवाज़ ज़रूर सुनाई पड़ती थी। इसके सिवाय और कुछ नहीं।

लगभग साढ़े दस बजे रात का समय था। काफ़ी रात थी। उमेश और पुष्पा नुमायश से लौटकर भोजन करके सोने को तैयारी कर रहे थे। इसी समय दरवाज़े पर खटखट की आवाज़ हुई और घबड़ाए हुए सा किसी ने पुकारा, 'बाबूजी!' उमेश

एक बार चोकन्ना हुआ, उसे अब लखनऊ में जाननेवाला कौन बाक़ी रह गया है। फ़िर खिड़की से लालटेन लटकाकर पूछा—'कौन है ?' देखा कि वही सामनेवाला नौकर है।

'क्योंजी क्या है' ? उसने पूछा।

'बाबूजी', गिड़गिड़ाकर नौकर ने कहा, 'हमारे मालिक की तबीअत बहुत ख़राब है, ज़रा आप देख लें ?'

उमेश मन में सोचने लगा, अँधेरी रात है। सूनसान निर्जन गली। यह बुला रहा है। क्या मालूम कुछ धोखा हो। उसने ज़ोर से कहा—'तो मैं कोई डाक्टर हूँ ?'

नौकर ने बड़े विनीत स्वर से कहा, 'बाबूजी ज़रा आप यों ही देख के मुझे बता देते।'

वह कुछ ऐसा डरा हुआ सा मालूम देता था और उसके स्वर में कुछ ऐसी करुणा थी कि उमेश अपने को अधिक न रोक सका और चेस्टर पहन कर नीचे उतर आया। दरवाज़ा बन्द करके बोला, 'मैं अभी आता हूँ।'

उमेश बहुत चौकन्ना-सा नौकर के साथ उस मकान में पहुँचा। सीलन की सड़ी हुई बदबूवाले उस मकान में बाहर के दरवाज़े के पास ही से ऊपर जाने को सीढ़ियाँ थीं, जिनके ऊपर लालटेन का धीमा-धीमा प्रकाश फैला हुआ था। ज़ीने की दीवारों पर मकड़ियों के जाले तने थे और झींगुर इस समय भी दीवारों पर दौरा कर रहे थे। ज़ीना ख़तम होने के बाद ही चार क़दम छत पर चलकर एक कमरा था,

जिसमें प्रकाश नहीं के बराबर था, यद्यपि ज़ीने के ऊपर लालटेन नौकर इस प्रकार रख गया था कि प्रकाश पहुँचता रहे।

कमरे के दरवाज़े पर उमेश पहुँचा ही था कि उसने बीमार के कफ़ की घड़घड़ाहट और उसका डिलीरियम की बेहोशी में बड़बड़ाना सुना। उमेश चेस्टर की जेबों में हाथ डाले खड़ा रहा इसी समय उसने मरीज़ को अस्फुट स्वर में कहते हुए सुना—'उमेश'। उमेश एक बार घबड़ा गया, यहाँ उसको जानने वाला कौन है। उसने एक दम से कहा—'कौन हो तुम ?'

मरीज़ थोड़ी देर के लिए चुप हो गया। उसके गले के पास कफ़ घरघरा रहा था। उमेश के प्रश्न का कुछ उत्तर न मिला। नौकर कुर्सी लेने गया हुआ था। उमेश ने ज़ोर से आवाज़ दी, 'ए महरा, जल्दी लालटेन यहाँ लाओ। नौकर जल्दी-जल्दी एक हाथ से एक पुराना मोढ़ा खींचता हुआ और दूसरे हाथ में लालटेन लिये हुए कमरे में आया। इस समय तक मरीज़ के गले का कफ़ हट चुका था, उसने फिर कहना शुरू किया, 'उमेश...मैं पुष्पा को...प्यार...।' उमेश समझा कि मरीज़ बोध में है और उसकी बात का उत्तर दे रहा है। वह क़रीब क़रीब समझ ही गया था कि मरीज़ कौन है कि नौकर लालटेन लेकर आया। नौकर के हाथ से लालटेन लेकर उसने देखा। उसका अनुमान ठीक था। कृश-शरीर जितेन्द्र चारपाई पर पड़ा था। उसका सुगठित शरीर घुल गया था और वह बेहोशी में पड़ा हुआ बड़बड़ा रहा था।

उमेश के मस्तिष्क पर एक बार इतना भार पड़ा कि वह पीछे रखे हुये मोढ़े पर धम से बैठ गया और सिर पर हाथ रखकर एक बार ही न जाने कितनी बातें सोचने लगा। इतने में नौकर बोला—'बाबू, आपने क्या देखा, बाबू की हालत कैसी है ?

उमेश बोला, 'क्या कहा ?', और फिर उठकर ज़ीने की तरफ़ चलता हुआ बोला—'मैं अभी आता हूँ।' नौकर लालटेन लिए ज़ीने के दरवाज़े तक आया। उमेश की जल्दी देखकर उसकी हिम्मत ही न पड़ी कि वह फिर अपने मालिक की तबीअत के बारे में पूछे। वह सोचने लगा, "ये बाबू को देखते ही कुर्सी पर गिर से क्यों पड़े, क्या बाबू की हालत बहुत खराब है, या ये कोई बाबू की जान पहचान के हैं ?" वह लालटेन लिए हुए कमरे में लौट आया और बाबू के मुँह की ओर देखने लगा। बाहर उमेश के घर के दरवाज़े खुलवाने की आवाज़ उसे सुनाई दे रही थी।

(६)

उमेश अपने कमरे में पहुँचकर बिछौने पर बैठ गया। पुष्पा उसके मुँह की ओर देखने लगी, 'क्योंजी क्या है, कैसी तबियत है उसकी ?' उमेश ने अपनी बात की भूमिका सी बाँधते हुए कहा, 'पुष्पा, मैं आज तुमसे एक चीज़ माँगूंगा। अभी तक मैंने तुमसे कुछ माँगा नहीं। मुझे पूरी आशा है कि तुम मेरी बात की रक्षा करोगी।'

पुष्पा की समझ में कुछ न आया। बोली, 'क्या कहते हो ? कहो न। मेरा जी घबड़ा रहा है। मेरे पास ऐसा क्या है जिसे मैं तुम्हें न दे सकूँगी।'

उमेश ने कहा, 'पुष्पा, सामनेवाले मकान में जीतू पड़ा हुआ है।' पुष्पा चौंक उठी—'वहाँ जीतू बाबू हैं ?' उमेश कहता गया—'उसे दमा के आसार दिखाई पड़ते हैं। बदन की रंगत से यह मालूम पड़ता है कि न जाने कितने महीनों से एक बूँद ख़ून भी उसके शरीर में न बना होगा। वहाँ वह बेहोश पड़ा हुआ है। कफ़ सारे सीने पर इकट्ठा होकर घरघरा रहा है, और उसकी देख-भाल करने को है सिर्फ़ एक नौकर। पुष्पा जीतू बड़ा दुखी है। बचपन से उसने सुख का नामोनिशान नहीं जाना। बचपन में उसे माता-पिता का प्रेम न मिल पाया और वह चल बसे। युवावस्था में भी कोई उसे ऐसा न मिला जो उसके हृदय को भरमा सकता। अब इस समय वह मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ है। पुष्पा वह तुम्हारे स्नेह का भूखा है, यह मैं जान सका हूँ। तुम मेरी ओर देखती क्या हो ? उसके दैन्य की ओर ध्यान दो। वह तुमसे पहले से ही प्रेम करता था और उसका यह विचार मुझ पर प्रगट न हो जाय, इसीलिए वह मुझसे इतना अधिक स्नेह करने पर भी मेरे पास से चला गया। प्रेम के इस कीटाणु ने ही उसके शरीर और मन को खा डाला है, और वह असहाय अवस्था में मृत्यु की ओर क़दम बढ़ाता हुआ भी चारपाई पर निर्जीव पड़ा सा दिखाई देता है। इस

समय यदि उसका जीवन किसी तरह बच सकता है तो वह तुम्हारे प्रेम से। इस समय उसकी दशा ऐसी है कि हार्दिक प्रेम को वह न समझ सकेगा, पुष्पा, तुम्हें प्रेम का प्रदर्शन करना होगा। पुष्पा, मेरे लिए तुम जीतू की जान बचा लो, नहीं मैं जी न सकूँगा। उसके दुःखी और प्रेम-शून्य जीवन को प्रेम की क्षुधा के कारण ही समाप्त होते मैं कैसे देख सकूँगा। पुष्पा मेरे लिए तुम इतना करो। तुम उसे यह प्रगट कर दो कि तुम उसे हृदय से प्रेम करती हो। उसे यह विश्वास हो जाय, बस वह अच्छा हो जायगा। पुष्पा इस जीवन-दान से, इस प्रेम-प्रदर्शन से तुम्हारे उज्ज्वल सतीत्व के सूर्य पर धूल न पड़ सकेगी। पुष्पा! बोलो, मेरी बात.......?'

पुष्पा के आँसू बहने लगे। उसने उमेश के पैरों में सिर रखते हुए कहा, 'मुझे तुम जो कुछ कहोगे सब स्वीकार है।' उमेश के मुख पर चमक आ गई। चिन्ता की रेखाएँ हट गईं। वह खड़ा होकर बोला, 'अच्छा, तो चलो अभी वहां चलें, कल धूप के वक्त उसे इस मकान में उठा लावेंगे।'

(७)

नोकर प्रतीक्षा कर रहा था। उमेश के नीचे पहुँचते ही वह लालटेन ज़ीने में दिखाने आया। देखा—बाबू के पीछे-पीछे एक सुन्दरी युवती भी है। समझ गया, ये लोग मालूम होता है बाबू के कोई रिश्तेदार हैं।

पुष्पा और उमेश ऊपर पहुँचे। लालटेन लेकर उमेश ने

से कहा, 'देखो, कितना दुबला हो गया है।' पुष्पा ने देखा, चौंक उठी। मनुष्य में इतना परिवर्तन संभव है! ब्याह के समय कैसा शरीर था, कैसा भरा और कांतिमय मुख था, और आज—ठीक उसका उल्टा!

कफ की घरघराहट देखकर पुष्पा ने उसी समय जावित्री की चाय बनाकर चम्मच से जितेन्द्र के मुँह में डाली। थोड़ी देर में उसकी गर्मी के कारण घरघराहट बन्द हो गई। ऐसा मालूम हुआ जैसे सीने पर से कफ हट गया हो और थोड़ी देर में ही जितेन्द्र की बेहोशी नींद में परिणित हो गई और वह सो गया।

दूसरे दिन जितेन्द्र की नींद खुली तो सामने उमेश बैठा हुआ था। उसे देखते ही जितेन्द्र की आँखों से आँसू बहने लगे। उमेश के दोनों हाथ अपने हाथों के बीच में दबाकर उसने आँखें बन्द कर लीं और बोला, 'तुम आ गए, उमेश! यद्यपि मैंने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी थी, फिर भी मुझे पूरा विश्वास था कि मेरे अन्त समय में तुम कहीं भी होगे वहाँ रुक न सकोगे। मैं जानता था कि तुम आओगे और मैं तुम्हारे सामने ही मरूँगा।

उमेश ने कहा, 'जीतू, बहुत बातें न करो। सबेरे मैं डाक्टर को लाया था, उसने बोलने को मना किया है।'

इसी समय पुष्पा छत पर से बेलाडोना प्लास्टर गरम करके लाई और एक पट्टी बनाकर, कमीज हटाकर प्लास्टर लगाने लगी। इसी समय उमेश ने कहा—'जीतू, तुम्हारी भाभी है।'

प्लास्टर लगाते हुए पुष्पा को मालूम पड़ा कि जितेन्द्र के हृदय की गति चौगुनी बढ़ गई।

जितेन्द्र ने आँखें बन्द किये हुए ही कहा—'वही हैं क्या?'

उमेश—'आँखें खोलकर देखो, क्या शरमा रहे हो?'

जितेन्द्र ने आँखें खोलीं, सामने पुष्पा खड़ी थी। व्याह से और अधिक उसका सौंदर्य निखर आया था। लेकिन इस समय उसके मुख पर लजा का वह भाव न था, वह निःसंकोच प्लास्टर लगाने के लिए झुकी हुई थी। जितेन्द्र के मुख से बर्बस एक साँस निकल गई। उसने कहा—'उमेश, तुम लोग बड़े मौक़े से आ गए, नहीं तो मेहतर लाश उठाते।' इतना कहते ही उसे बड़ी ज़ोर से मूर्छा आ गई। कफ़ सीने पर घरघराने लगा। डाक्टर को महरा से बुलवाया। उसने कहा, 'सब ठीक है। यह दवा पिलाओ, इससे बेहोशी भी दूर होगी और कफ़ सीने पर से हटेगा।'

दवा पिलाई गई, लेकिन जितेन्द्र की तबीअत कुछ सम्हलती हुई न दिखाई दी। पुष्पा अपनी गोद में जितेन्द्र का सिर रख कर बैठ गई। इसी समय उसकी मूर्छा टूटी। आँखें खोलते ही वह चौंक पड़ा। कफ़ के कारण अस्पष्ट वाणी से वह बोला—'भाभी…'

जितेन्द्र को और ठीक से अपनी गोद में लिटाते हुए पुष्पा ने कहा—'आप बोलें नहीं। मुझे और इन्हें आप और और समझकर ऐसी बातें करते हैं। हम तीनों एक ही हैं।'

फिर ज़ोर से कफ़ गले के पास अड़ गया और वह कुछ न बोल सका। एक बार उसने पुष्पा की गोद से हटने का प्रयत्न किया, पर बेबस होकर फिर गोद में ही रह गया। मूर्छा आ गई। इस बार तीन घंटे तक मूर्छा न टूटी।

सन्ध्या के समय, जब पक्षी बसेरा लेने को लौट रहे थे, जितेन्द्र ने आँखें खोलीं। उसके आँसू बहने लगे। पुष्पा ने कहा, 'जीतू, तुम मेरे लिए अपने को जीवित रक्खो।'

जितेन्द्र ने कहा—'मैंने अब सब कुछ पा लिया। इससे अधिक मरने के उपयुक्त कौन समय होगा। भाभी उमेश...।'

इसी समय उसके दाँत बन्द हो गए, परन्तु आँखें खुली रह गईं और वे फिर कभी न बन्द हुईं।

पुष्पा रो पड़ी। वहाँ अब कुछ बाक़ी न रह गया था। उमेश वैसा ही मूर्ति की भाँति बैठा रह गया, उसके नेत्रों में आँसुओं की एक बूँद भी न थी। पुष्पा का हृदय असह्य वेदना और दुःख के कारण मथने-सा लगा—मृत जितेन्द्र के लिए या जीवित उमेश के लिए?

कलंक का टीका

(१)

मेरी पुरातन स्मृतियों में सदन का ऐसा व्यक्तित्व है, जो समयप्रवाह द्वारा धुला नहीं। मुझे सदन से अलग हुए यद्यपि अब लगभग दो युग व्यतीत हो गये हैं, परन्तु सदन की सौम्य मूर्ति अब तक मेरे नेत्रों के सामने नाच रही है; क्योंकि मैंने उसका-सा सुन्दर, शीलवान् और रसिक जीव अब तक नहीं देखा। एक कारण और है। उसके उस प्रेमपूर्ण जीवन में एक ऐसी विचित्र घटना घटी थी, जिसे मैं क्या, जो कोई सुनेगा, वही इस जीवन में नहीं भुला सकेगा।

तब हम लोग लखनऊ के अमीनाबाद मोहल्ले में रहते थे। मेरी आयु उस समय लगभग ६ या ७ साल की थी। हमारे सब साथ के खेलनेवाले (सदन, सुरेन्द्र, मदन, त्रिशुन, मालती, इन्दिरा) भी लगभग इसी अवस्था के थे। इन्दिरा सदा हम लोगों के खेल में सदन की तरफ़दारी करती। जब लुका-छिपी के खेल में इन्दिरा बैठकर आँख मूँदती और सदन चोर हो जाता तो इन्दिरा उसे बतला देती कि हम लोग कहाँ छिपे हैं। वैसे ही यदि हम लोग दौड़-भाग के किसी खेल में इन्दिरा को बहुत परेशान करते तो सदन उसके बदले दाँव देने को तैयार

हो जाता। यद्यपि सदन और इन्दिरा की इस साँठ-गाँठ से हम लोगों के खेल में कभी-कभी बड़ी गड़बड़ी पड़ती थी, परन्तु हम लोग इसके लिए उनसे लड़ते न थे। लोगों की निगाह में यह बच्चों का खेल था।

वे दिन हवा हुए। हम लोगों की चौकड़ी तभी से भूल गई, जब से पढ़ाई का जुआँ हमारे कन्धों पर रक्खा गया। अब मुझे, सदन या इन्दिरा को मिलकर न मिट्टी के घिरौंदे बनाने का समय था और न लुका-छिपी खेलने का। कभी-कभी चौथे-पाँचवें भेंट हो जाती तो यही बातें होतीं—"कहो भाई, कैसे पर्चे किये?" या "तुम्हारे स्कूल में अमुक विषय में कहाँ तक पढ़ा दिया गया है?" इतने में दोनों में से एक कह उठता—"अच्छा भाई, अब चलता हूँ, मास्टर साहब के आने का वक्त हो गया है।" या "कल फ़लाँ विषय का टेस्ट है, उसके लिए प्रिपेयर करना है" और हम लोग अलग हो जाते फिर हफ़्तों के लिए। अब किसी को खेलने की, शैतानी के मन्सूबे बाँधने का या रूठे मित्रों को मनाने की छुट्टी न थी। अब सब अपने-अपने रंग में मस्त थे।

मेरा पुराना मित्र सदन विद्या-मन्दिर हाई स्कूल से इन्ट्रेंस की परीक्षा पास करके अब म्यूज़िक कालेज के फ़िफ़्थ ईयर में बाँसुरी सीखता था। उसके हृदय में प्रेम का अंकुर अब पुष्ट हो गया था। अपने हृष्ट-पुष्ट गौर वर्ण शरीर पर सूट डाँटे जब

वह बाँसुरी लिये म्यूज़िक कॉलेज की ओर चलता तो न जाने कितनी आँखें उसकी प्रतीक्षा करती थीं।

इन्दिरा (जो शहर के प्रतिष्ठित सज्जन व धनी पंडित ब्रज-कृष्ण कौल की पुत्री थी) भी सदन की इस सौम्य मूर्ति की पूजा अब तक करती थी। हमारे मोहल्ले के ठीक बीचोबीच इन्दिरा के पिता की शानदार कोठी थी, जिसके आसपास हम लोगों के सबके मकान थे। सदन का दुमंज़िला घर इन्दिरा के कमरे के ठीक सामने पड़ता था, जो सदन के जीवित रहने में अब एक-मात्र सहारा था; क्योंकि इससे उसे इन्दिरा के कभी-कभी दर्शन हो जाते। वह कहता—"मेरे लिए यही बहुत है; क्योंकि इन्दिरा से वार्तालाप होना तो अब जीवन में बदा नहीं है।" मैं उसकी इन बातों को सुनकर गद्‌गद हो जाता; क्योंकि ये बातें सच्चे दिल से कही जाती थीं। मैं रो पड़ता क्योंकि वह सच्चा प्रेमी समाज के क्रूर करों द्वारा अपनी प्रेमिका से इतनी दूर फेंक दिया गया था और उसे बधाई देता इसलिए कि उससे कोई प्रेम करता था, इसलिए कि वह प्रेम करने के योग्य भी तो था।

अकसर रात्रि में नौ या दस बजे जब चन्द्र की कान्ति बढ़ने लगती और उस अमृत-वर्षा में जिस समय सारा संसार प्रेम-समीर से मदमस्त हो जाता तो सदन की छत पर से एक अत्यन्त सुरीली, मँजी हुई परन्तु दर्दभरी बाँसुरी की आवाज़ फैल कर हमारे मोहल्लेवालों को रुला देती—

'मोरा मनवा बेहाला, जियरा उठत ज्वाला'

उसी समय एक हारमोनियम का स्वर भी उस बाँसुरी की ध्वनि से आ मिलता और थोड़ी देर में वे दोनों स्वर एक दूसरे मे पूर्णतया मिलकर सारे संसार को दर्द और करुणा से भर देते। यह हारमोनियम की आवाज़ इन्दिरा के कमरे से आती थी। मैं सच कहता हूँ, कोई भी हृदयवाला मनुष्य उस करुण ध्वनि को सुनकर अपने आँसुओं को न रोक सकता था।

प्रायः यह रुदन नित्य का था।

(२)

मेरा यह अपना अनुभव है कि लड़कियाँ चन्द्रमा की भाँति बढ़ती हैं। उनमें यौवन और सौन्दर्य का विकास लड़कों की अपेक्षा बहुत जल्दी होता है। मैंने स्वयं देखा है कि मेरे साथ की खेली हुई मालती का ब्याह तभी हो गया, जब मैं नाइन्थ क्लास में पढ़ता था और मैं अभी एफ़० ए० पास भी न कर पाया था कि मालती दो बच्चों की मां बन चुकी थी।

आख़िर हमने एक दिन वह भी सुना, जो सुनने को हम तैयार न थे और जो समाज के लिए एक बहुत साधारण बात थी। वह था कानपुर के एक प्रसिद्ध वकील के साथ इन्दिरा का ब्याह। सदन के साथ नहीं? नहीं, यह कैसे सम्भव है? कहाँ इन्दिरा सारस्वत ब्राह्मण की पुत्री और कहाँ सदन खत्री का बालक। भला समाज इसकी आज्ञा कैसे दे सकता है? हाँ,

तो व्याह तय हो गया। हम लोग भी पड़ोसी के नाते उस व्याह में हृदय पर पत्थर रखकर सहयोग देने लगे।

बारात आई, व्याह हो गया उतनी ही धूमधाम के साथ, जितना धूमधाम के साथ एक बड़े आदमी की लड़की का व्याह होता है। मैंने और सदन, मदन, सुरेन्द्र, विशुन आदि सबने व्याह में ख़ूब काम किया। पर हृदयों पर साँप लोट रहे थे सहानुभूति से, दया से, करुणा से। मैं रोता था अपने प्रिय मित्र सदन से लिए, जिसका भविष्य जीवन सदा के लिए व्यर्थ बन गया था। हमें विश्वास न होता था कि इन्दिरा सदन की बाँसुरी सुने बिना रह सकेगी।

हम लोग सब इन्दिरा और सदन के दुःखों की कल्पना करते ही रह गये और इन्दिरा अपनी ससुराल चली गई।

(३)

तीन वर्ष बीत गये, इन्दिरा अपनी ससुराल से व्याह के बाद एक दिन को भी न आई। सदन की दशा इस बीच में बहुत ही शोचनीय हो गई। आख़िर एक दिन मैंने सुना—

यद्यपि इन्दिरा अपनी ससुराल में सबको बहुत प्रिय थी, वह सबको प्रसन्न रखती, सबके सुख-दुःख का ध्यान रखती, किसी को उसके व्यवहार से शिकायत न होती, परन्तु एक घटना ऐसी घटी, जिससे उस शान्ति-पूर्ण समाज में कलह का प्रवेश हो गया। इन्दिरा अपने पति की सेवा सब प्रकार करती और वह

ब्याह के बाद किसी पर-पुरुष को न देख सकी थी, तथापि इन गत वर्षों में भी सदन को भूलने में वह सफल न हुई थी। यही उसका अपराध था।

इन्दिरा प्रसूतिका-गृह में थी। वह शीघ्र ही एक बच्चे की मां बननेवाली थी। रात्रि का समय था, सर्वत्र शान्ति थी; परन्तु इन्दिरा की आँखों में नींद के बदले आँसू थे, जिन्हें वह एक चित्र को देखकर बहा रही थी। सहसा वकील साहब (इन्दिरा के पति) ने कमरे में प्रवेश किया। परन्तु इन्दिरा को इसका पता न था। वह उसी प्रकार चित्र को हृदय से लगाये रोती रही; क्योंकि यह उसके लिए नई बात न थी। उसने न-जाने कितनी रातें इसी प्रकार रोते हुए व्यतीत कर दी थीं।

वकील साहब ने झपटकर चित्र उसके हाथ से छीन लिया और घृणा-मिश्रित कठोर स्वर में बोले—"किसके लिए इस तरह आँसू बहाती है विश्वासघातिनी, नीच, कुलटा ...।"

इन्दिरा के काटो तो ख़ून नहीं। वकील साहब क्रोध व घृणा से पागल हो गये। उन्होंने उस प्रेम की प्रतिमा इन्दिरा को एक ठोकर मारी, चित्र पृथ्वी पर फेंक दिया और कमरे के बाहर चले गये। इन्दिरा लज्जा, ग्लानि और अपमान में बैठी घुलती रही। उसी रात उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जो हूबहू सदन का छोटा फ़ार्म-सा प्रतीत होता था। यद्यपि इन्दिरा ने तीन वर्ष से सदन की सूरत तक न देखी थी, परन्तु फिर भी वह शिशु सदन की प्रतिकृति बन गया था।

वकील साहब इस बात को बर्दाश्त न कर सके। उन्होंने दूसरे दिन ही उस बालक को उसकी बिलखती माता के साथ निकाल बाहर किया; क्योंकि इन्दिरा के हृदय में वकील साहब का फ़ोटो न था, उस सुन्दर शिशु और वकील साहब में कोई सामंजस्य न प्रतीत होता था। वकील साहब को सदन से तो घृणा हो ही गई थी, उस निरपराध छोटे सदन के वह व्यर्थ ही विरुद्ध हो गये।

मैं यह सुनकर कि निरपराध इन्दिरा अपनी ससुराल से इस प्रकार निकाल दी गई है, उसे ढूँढ़ने उसके पिता के यहाँ पहुँचा। परन्तु वहाँ इन बातों का किसी को पता भी न था। मैं जान गया कि लज्जावती इन्दिरा इस परिस्थिति में अपने पिता के यहाँ आना हर्गिज़ न पसंद करेगी।

(४)

इसके दो ही तीन दिन बाद प्रातःकाल के समय सदन मेरे घर पर एक छोटे बच्चे को गाड़ी में लिटाये हुए पहुँचा। मैंने बढ़कर बच्चे के मुँह पर से आवरण हटाया। आह, यही तो वह शिशु कुसुम है, जिसके लिए इन्दिरा का घर-बार छूटा। मैंने सदन से पूछा—"सदन, यह चन्द्रमा कहाँ से उतार लाये?"

सदन ने कहा—"भाई, आज सवेरे मैं जैसे ही घूमने के लिए बाहर निकला तो एक कपड़े में लिपटा हुआ यह बेचारा मेरी सीढ़ियों पर पड़ा था। न-मालूम इसे वहाँ कौन लिटा गया

था। इसे अन्दर ले जाकर देखा तो कथनी में एक काग़ज़ बँधा था, जिस पर लिखा था 'कलंक का टीका।' मैंने सदन को सारा हाल बताया। बेचारा रोते-रोते बेदम होकर मेरी गोद में गिर पड़ा। मैंने उसे धीरज बँधाया और हम दोनों उस बच्चे को पालने लगे।

मैंने और सदन ने इन्दिरा का बहुत पता लगाया, परन्तु उसकी कहीं झलक भी न दिखाई दी।

एक रोज़ शाम को मेरे दूधवाले ने आकर ख़बर दी कि उसने इन्दिरा की-सी एक स्त्री को गोमती के पास निर्जन में एक झोपड़ी में बैठे हुए रोते देखा था।

अब मैं और सदन एक ही साथ रहते। मैं दौड़कर उसके कमरे में पहुँचा, जहाँ वह बैठा उस बालक को छूछी से दूध पिला रहा था। मैंने उसे संक्षेप में वह सब कह सुनाया, जो दूध-वाले ने मुझसे कहा था। अभी हम लोग जल्दी-जल्दी चलने की तैयारी कर ही रहे थे कि एकदम आँधी और मूसलाधार पानी बरसना शुरू हो गया। हम लोगों की सब उत्सुकता और इच्छाओं पर पानी ने पानी फेर दिया।

दूसरे रोज़ मैं और सदन अँधेरे में ही गोमती के तट पर पहुँचे। वहाँ के दृश्य को देखकर हम लोग रो-पीटकर रह गये। गोमती की लहरें कलोलें कर रही थीं। अभी तारागण आकाश में छिटक रहे थे, सर्वत्र शान्ति थी। परन्तु गोमती का जल एक

झोपड़ी के छप्पर को बहाये हुए कलकल करता चला जा रहा था। मैं समझ गया कि यह रात के आँधी-पानी की करतूत है। सदन बड़ी देर तक गोमती के उस जल को (जिसमें वह प्रेम की प्रतिमा विलीन हो गई थी) अपने अश्रुरूपी प्रेम की भेंट द्वारा पवित्र करता रहा। उस दिन मैं बड़ी मुश्किल से सदन को घर लौटा कर ला सका।

(५)

अब भी रात्रि के समय जब चन्द्रदेव अपनी ढाका मलमल की चादर-सी चन्द्रिका सारी सृष्टि पर फैला देते हैं, तो मेरी छत पर बैठकर सदन बहुत ही करुणामिश्रित व वेदना-पूर्ण स्वर में गाता है—

'मोरा मनवा बेहाला, जियरा उठत ज्वाला,
तोरे दर्शन बिना ये जन्म अकारथ जाला।'

परन्तु उस बाँसुरी की ध्वनि में हारमोनियम का स्वर मिलानेवाला कोई नहीं है। हाँ, कभी-कभी जब वह 'कलंक का टीका' जग पड़ता है और किलकारी भर-भरकर बाँसुरी पकड़ने लगता है, तो मेरा हृदय वेदना से भर जाता है।

—

चित्रकार का उत्तराधिकारी

चित्रकार बैठा हुआ अपने स्टूडियो में सोच रहा था, अनजान में ही वह बड़बड़ा भी रहा था—"हाँ, मेरा उत्तराधिकारी कोई नहीं है।"

उसका लड़का कुछ दूर पर ही बैठा हुआ था, अपने ध्यानावस्थित पिता को जाग्रत-सा करता हुआ वह बोल उठा—"और मैं जो हूँ, पिता।"

चित्रकार के मुख पर एकदम घृणा के कुछ चिन्ह दृष्टिगोचर हुए, और वह बोला—"तुम!"—वह ठठाकर हँस पड़ा, "तुम और मेरे उत्तराधिकारी, तुम बेचारे मेरे उत्तराधिकारी क्या हो सकोगे, तुम तो मेरी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी हो, मेरी वस्तुओं के उत्तराधिकारी हो। मेरी महान कला वह तो पुत्रहीन ही रह जायगी। बोलो, क्या तुम मेरी कला के उत्तराधिकारी कहला सकते हो?"

लड़के के मुँह पर का रंग उड़ गया।

चित्रकार ने उसे देखा और वह फिर हँस पड़ा, ठीक एक विक्षिप्त की भाँति। लड़का उसे इस प्रकार हसते देखकर स्टूडियों के बाहर बड़बड़ाता हुआ निकल गया—"मुझे नहीं आता तो क्या करूँ, प्रयत्न तो करता हूँ, इसमें मेरा क्या वश है।"

चित्रकार ने उसे इस प्रकार जाते देखा और उसके हँसने की ध्वनि और ज़ोर से गूँज उठी। फिर वह एकदम गम्भीर हो उठा—"आजकल के नवयुवक, आलसी जल्दबाज़ जीव, परिश्रम करना तो यह जानते ही नहीं, चाहते ही नहीं, बस यही चाहते हैं ये कि एक ही क्षण में इन्हें सब कुछ आजाय। चित्रकला क्या जल्दी सीखने की चीज़ है। क्या वह जल्दबाज़ी में आ सकती है? कदापि नहीं, उसके लिये तो ख़ून को पसीना बना देना होगा। और जब काले केशों में श्वेतता आने लगे तो शायद तूलिका चलाना आदमी को आ जाय। चित्रकार बनना क्या आसान चीज़ है और यह नवयुवक...।"

चित्रकार अपनी धुन में बड़बड़ा रहा था कि स्टूडियो का द्वार ठेलकर अस्त-व्यस्त वस्त्रों में एक नवयुवक अन्दर घुस आया—"क्या तुम्हीं हो वह महान कलाकार कीर्तेन्द्र वर्मा"—उसने पूछा।

"कलाकार नहीं, कला का पुजारी कीर्तेन्द्र मैं ही हूँ।" नवयुवक कातर हो उठा, उसने कलाकार के चरण पकड़ लिए। कीर्तेन्द्र ने देखा, उसकी आँखें आँसुओं से भींगी थीं। "कहो-कहो तुम क्या चाहते हो? मैं तुम्हारे लिये क्या कर सकता हूँ?" उसने उसे हाथ से उठाते हुए पूछा। बड़ी मुश्किल से उसने चित्रकार के चरण छोड़े और अपने रुँधे हुए गले को साफ़ करने का प्रयत्न करता हुआ बोला—"मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ, तुम्हीं मेरा उद्धार कर सकते हो।"

"अपनी बात को साफ़-साफ़ कहो" —चित्रकार ने न समझते हुए कहा।

"मैं अपनी स्वर्गीया माता का एक बड़ा चित्र बनाना चाहता हूँ, तुम मेरी सहायता करो।"

"हाँ, हाँ, यह कौन बड़ी बात है। यह तो मेरा रोज़ का ही काम है। तुम उनका कोई छोटा से छोटा, जो भी चित्र प्राप्य हो ले आओ और मैं तुम्हारी इच्छानुसार उनका बड़ा से बड़ा चित्र बना दूँगा। इसमें तो कातर होने की कोई बात नहीं है, और यदि तुम ग़रीब हो तो भी परवाह नहीं, मैं तुमसे कुछ भी न लूँगा। धन का लोलुप मैं नहीं हूँ, मैं भावना की क़द्र करता हूँ। तुम उनका चित्र ले आओ, मैं तुम्हारा काम करने का वचन देता हूँ।"

नवयुवक फिर भी कातर दृष्टि से चित्रकार की ओर देखता रहा—"तुम बड़े दयालु हो कलाकार परन्तु, परिस्थिति बिल्कुल दूसरी है। मेरी माता का कोई भी चित्र प्राप्य नहीं है।"

"क्या? कोई भी चित्र नहीं है? तब चित्र कैसे बन सकेगा युवक"—चित्रकार ने आश्चर्य से पूछा।

"उनका चित्र सिर्फ़ मेरे मानस-पट पर अंकित है, परन्तु वह है बहुत ही साफ़, उसकी एक-एक रेखा, एक-एक रोम, एक-एक चढ़ाव-उतार मेरे मस्तिष्क-पटल पर बड़े गहरे अंकित हैं। माता का स्नेहच्छाया से रंगीन वह मुख क्या कभी भुलाया जा सकता है?"

चित्रकार उसके भावावेश में कहे हुए उन शब्दों को सुन रहा था। उसने कहना जारी रखा—"तुम मुझे चित्रकला सिखला दो कलाकार। मुझे विश्वास है मैं उनका चित्र बनाने में सफल होऊँगा।"

"परन्तु क्या तुम्हें पहले से भी इसका कुछ अभ्यास है?"

'नहीं, बिल्कुल नहीं, परन्तु निश्चिन्त रहो, तुम जो कुछ सिखलाओगे उसे मैं बहुत जल्दी सीखूँगा। मैं बड़े परिश्रम से काम करूँगा मुझे निराश न करो चित्रकार, तुम्हें मुझ से निराशा न होगी।

"नहीं मैं तुम्हें निराश न करूँगा। परन्तु अपने हाथों में इतनी शक्ति पैदा करने के लिये जितनी तपस्या की आवश्यकता पड़ेगी क्या उसके लिये तुम तैयार हो?

"बिल्कुल"—नवयुवक ने बड़ी तत्परता से उत्तर दिया।

"घर-बार छोड़ देना होगा।"

"घर तो मैं पहले ही छोड़ आया हूँ।"

"सारे प्रेम, स्नेह व मोह के बन्धनों को तिलांजलि दे देनी होगी।"

"दे दी।"

"इस काम के पूर्ण कर सकने तक शायद तुम्हारी विवाह की अवस्था भी निकल जाय।"

"कोई चिन्ता नहीं।"—युवक ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

"तब तुम अवश्य सफल होओगे।"

× × ×

शक्तिवान, तेजवान सूर्य भगवान को भी दिन भर के कठिन परिश्रम के पश्चात अब विश्राम करने की आवश्यकता मालूम होने लगी थी और इसी कारण पृथ्वी के कर्मक्षेत्र से वे अपना मुँह छिपा रहे थे। चित्रकार कीर्तेन्द्र अभी बाहर से टहल कर अपने स्टूडियो के सामने पड़ी आरामकुर्सी पर आ गिरा था। कितना परिश्रमशील है यह नवयुवक और साथ ही साथ मेधावी भी। यह एक दिन सफल चित्रकार अवश्य होगा। इसकी कला की धूम सारे संसार में मच जावेगी और तब लोग कहेंगे, वह कीर्तेन्द्र का शिष्य है न, क्यों न हो। तब भगवान मेरे पहले के सारे पापों को भूलकर मुझे स्वर्ग भेजने में हिचकिचाएँगे नहीं। परन्तु वह है कहाँ? पागल मातृभक्त, स्टूडियो के अन्दर तो इतने अँधेरे में होगा नहीं। यह क्या! वह चौंक पड़ा, स्टूडियो के अन्दर से हाथापाई और गरमागरम बहस की आवाज़ सुनाई दे रही है।

"कौन है यहाँ भाई? उसने जाकर बिजली का स्विच दबा दिया। अरे मुनीश, तुम अभी तक इस चित्र की प्रतिलिपि करने में ही लगे हुए हो, इतना अंधकार हो गया, तुम्हें यह भी होश नहीं है कि रोशनी भी कर लो। और यह कौन है?" पास ही में लज्जित सी खड़ी सकुचाई हुई उस अनुपम सुन्दरी नवयुवती को देखते हुये उसने पूछा?

"यह मेरी बाल्यकाल की साथिन तनमन है, कलाकार।" तनमन के रूप ने कलाकार के नेत्रों को एकबार फिर अपनी ओर आकर्षित किया। "पर तुम लोगों में लड़ाई किस पर हो रही थी?"

चित्रकार ने सुना वह सुन्दरी कह रही थी—"मैं इनसे कहती थी कि अब रात हो गई, काम बन्द करो, और यह कहते थे कि अभी तो मुझे दिखलाई देता है, अभी कहाँ रात हुई है।"

"हाँ इसके तो आँखों में रोशनी जलती है। अजीब पागल है यह लड़का। नौकर जलपान रख जाते हैं, भोजन रख जाते हैं और यदि मैं नहीं देखता हूँ तो वह सब का सब रक्खा ही रह जाता है। नौकरों से यह 'अभी खाता हूँ, अभी खाता हूँ' कहता रहता है। मैंने तो ऐसी लगन हो नहीं देखी। देखो न, इसे अँधेरे में भी दिखलाई देता है और यह तुम्हारी ऐसी रानी की बात भी नहीं मानता, तो फिर यह किसे गिनेगा।"

वह भोली-भाली लड़की चित्रकार की बात पर कुछ उत्साहित हुई—"आप जानते हैं, यह कौन है?"

"कहाँ बेटी, मैं तो इस पगले से इसका परिचय पूछता-पूछता हार गया, पर इसने न बताया। तीन वर्ष इसे यहाँ आये हो गए, मैं चाहता था इसके घर वालों को ख़बर दे दूँ पर इसने पता न दिया।"

"तू चुप न रहेगी तनमन?" मुनीश बोल उठा—"बकबक लगाए हुए है।"

"कहने क्यों नहीं देता !—हाँ बेटी तुम बताओ।"

"यह कलकत्ते के प्रसिद्ध धनी सेठ परमानन्द के पुत्र हैं, करोड़ों की सम्पत्ति के यह स्वामी हैं। पिता इनके दुख में रो-रोकर अंधे हो गए हैं। भाई ने अखबारों में न जाने कितने रुपयों का इनाम इनके पता बतलाने वाले के लिये घोषित किया है, और यह शायद जबसे आए हैं इस स्टूडियो से निकले ही न होंगे।"

"निकला तो वास्तव में नहीं है।"—चित्रकार ने कहा।

"मैंने इनके वृद्ध पिता को वचन दिया था कि मैं इन्हें एकबार उन्हें ढूँढकर दिखला दूँगी, डेढ़ घण्टे से मैं यही इनसे कह रही हूँ और एक यह हैं कि अपना ब्रश चलाए जाते हैं, मेरी बात भी नहीं सुनते। कहते हैं, मुझसे अब किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। जब तक मैं अपनी माँ का चित्र नहीं बना लेता, मेरा संसार में कोई नहीं है। जब मेरी साधना की वह मूर्ति बनकर तैयार हो जायगी तभी मेरी तपस्या समाप्त होगी।"

चित्रकार मन में सोचता था इस सौन्दर्य की प्रतिमा तनमन से भी कोई क्या ऐसो कठोर बात कह सकता है। कला की सर्वोत्कृष्ट साधना के वरदान स्वरूप जब यह सामने खड़ी हो तो किसकी तूलिका चल सकेगी, कौन इसकी उपेक्षा कर सकेगा। मैंने ही तो मुनीश को इस क्रूर बचन पाश में बाँधा था परन्तु हे ईश्वर, मुझे क्षमा करना, मैं अब वृद्ध हो चला, यौवन मुझसे

विदा ले चला परन्तु ऐसी सौन्दर्य की रानी को देखकर क्या मैं भी अपनी सारी कला इसके चरणों पर न्योछावर न कर दूँ।

तनमन की मधुर कण्ठध्वनि फिर कमरे में गूँज उठी—"तुम इनके गुरु हो चित्रकार उसी नाते मेरे भी पूज्य पिता के समान हो। अपने इस बाल्य साथी के नवीन व कठोर व्यवहार पर आज मेरे भी हृदय का बाँध टूट गया है। इनकी कठोरता मुझे भी विवश करती है कि मैं अपना हृदय तुम्हारे सामने खोल कर रख दूँ। कलाकार, यही व्यक्ति जो आज मेरी उपेक्षा कर रहा है, मेरी ओर भर दृष्टि देखता भी नहीं है; मेरे लिए आहें भरता था आठ-आठ आँसू रोता था और मेरे एक दिन के लिये अलग हो जाने पर पानी तक न पीता था। इसी ने मुझे तनमन नाम दिया था और कहा था कि मैं इसकी तनमन हूँ इसलिये मुझे यह नाम स्वीकार करना पड़ेगा। मैंने समझा था मैंने इसके हृदय पर अधिकार जमा लिया और मैं इसकी तनमन बनकर अपने को धन्य समझने लगी। हमारे माता-पिता ने भी हमारे प्रेम का सन्मान किया और उस वर्ष यदि इनकी माता का स्वर्गवास न हो गया होता तो हम विवाह-बन्धन में बँध गए होते। माता की मृत्यु होते ही यह घर से भाग निकले और तीन वर्ष के अनवरत परिश्रम के पश्चात् जब मैंने इन्हें ढूँढ पाया है तो यह कहते हैं कि मेरा तुमसे कोई संबंध नहीं है। मैं कहती हूँ कि मुझे अपने चरणों में स्थान दो,

मैं सिर्फ़ तुम्हारी सेवा करना चाहती हूँ और कुछ नहीं चाहती तो कहते हैं कि मेरी कला-साधना में बाधा पड़ेगी।"

तनमन रो पड़ी, वह अपने आँसू पोंछती हुई कमरे से बाहर निकल गई। चित्रकार भी अपने आँसू न रोक सका पर मुनीश की तूलिका अबाध गति से अपने अभ्यास कार्य में चली जा रही थी।

× × ×

बीस वर्ष बीत गए, प्रसिद्ध चित्रकार कीर्तेन्द्र वर्मा अब अत्यधिक वृद्ध हो गए। उठने-बैठने की उनमें सामर्थ्य नहीं। उनके कला-भवन की कीर्ति उनके प्रिय शिष्य मुनीश गुप्त ने देश भर में फैला रखी है। उनके हाथ की शक्ति पर लोग दाँतों तले उँगली दबाते हैं। किसी भी अनजाने व्यक्ति को एक बार देखकर वर्षों बाद वे उसका बिल्कुल स्वाभाविक चित्र बना देते हैं ऐसी सामर्थ्य उन्होंने अपने हाथों में पैदा कर ली है। उनकी कला-साधना की समाप्ति की प्रतीक्षा करती हुई तनमन अब युवती से अधेड़ हो गई है। घरबार, माता-पिता के सारे स्नेह-बन्धन को छोड़कर निकट ही एक छोटा सा घर लेकर मुनीश की प्रतीक्षा करती है।

× × ×

वर्ष भर से चित्रकार मुनीश गुप्त अपनी कला के चरम विकास की प्राप्ति में रत हैं। वे अपनी माता का चित्र बना रहे

है। जिसके लिये उन्होंने अपने सारे जीवन भर तपस्या की है। उनकी तन्मयता देखते ही बनती है किसी बात की सुध नहीं रहती। गर्मी में पसीना शरीर से बहने लगता है पर तूलिका की गति धीमी नहीं पड़ती, शीत ऋतु में जितना तेज़ी से शीत ब.ता है उनकी तूलिका की गति उतनी ही बढ़ती जाती है। वर्षा की उमस का उन पर प्रभाव नहीं पड़ता न उसकी रमणीयता एक क्षण को उसकी दृष्टि को अपनी ओर आकर्षित कर पाती है।

अपने आपको, अपने जीवन को, आसपास के संसार को भूला हुआ चित्रकार एक दिन चिल्ला उठा—"प्रभु तेरी महिमा अपरम्पार है, तू धन्य है, मेरी साधना आज सफल हुई।"

मुनीश की आवाज़ सुनकर कीर्तेन्द्र वर्मा नौकर के सहारे स्टूडियो के अन्दर आए। मुनीश उन्हें देखकर उनके चरणों से लिपट गए, "मेरे गुरु, यह इन्हीं चरणों की कृपा से हुआ है।" कीर्तेन्द्र ने बोर्ड पर लगे हुए कैनवस की ओर देखा। तनमन भी बुलाली गई थी। उसने मुनीश की स्वर्गीय माता की उस प्रतिकृति को देखा और वह देखती ही रह गई। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे एक बार वे सौम्या अपनी स्नेहमयी आँखों से उसे देखने को फिर इस मर्त्यलोक में चली आई हैं। कीर्तेन्द्र की दृष्टि कला की दृष्टि से उस चित्र की परख कर रही थी। देखा, वह वृद्धावस्था के चिह्नों और गढ्डों से चिन्हित उस एक-एक

झुर्री, एक-एक केश की श्वेतता, आँखों में दिखलाई देती हुई वह स्नेहच्छाया, पतली झुर्रीदार पलकें, सिकुड़न पड़े हुए वे ओंठ मानों मुनीश की सफलता, उसकी कुशलता और अक्षय कीर्ति का सन्देश अब देने ही वाले थे। कीर्तेन्द्र ने मुनीश का हाथ पकड़ लिया और कहा—"पुत्र तुम्हारा परिश्रम धन्य है, मैंने तुम्हारी पूजनीया माताजी को नहीं देखा पर इस चित्र को देख कर मेरा मन यह कह देता है कि इससे अधिक स्वाभाविक चित्र उन का ही नहीं संसार की किसी माँ का नहीं हो सकेगा। तुम्हारा अनुष्ठान आज पूर्ण हुआ, मेरी तुम्हें कोटि-कोटि बधाई। अपनी कला के तुम्हारे ऐसे उत्तराधिकारी को पाकर मैं धन्य हुआ।" मुनीश ने चित्रकार कीर्तेन्द्र के चरण पकड़ लिये, उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। कीर्तेन्द्र अपने विश्राम-गृह को चले गए और वहाँ से मुनीश के पिता को आने के लिये तार दे दिया।

मुनीश मैं तनमन का हाथ पकड़ा और उसके कन्धे पर सिर रखकर एकटक अपनी उस स्नेहमयी माँ के चित्र को देखता रहा। घंटों उन्हें इसी प्रकार बैठे हो गए, आँखें फाड़कर एकटक वे उसी अमर चित्र की ओर देखते रहे। एक क्षण के लिये वहाँ से नहीं हटे।

× × ×

जब मुनीश के वयोवृद्ध पिता ने उनके सन्मुख आकर उनके सिर पर हाथ रखा तो मुनीश चिल्ला उठा, 'कौन है यह जो मेरी माता के और मेरे बीच में आकर खड़ा हो गया है ?'

वृद्ध सज्जन ने काँपते हुए स्वर से पूछा—"बेटा, क्या तुम मुझे भी भूल गए। मैं तुम्हारा अभागा पिता हूँ।"

मुनीश रो पड़े—"क्षमा करो पिता, ईश्वर की कृपा से अब मुझे और कुछ नहीं दिखलाई दे रहा है, सिर्फ़ माता का वह चित्र ही मेरी दृष्टि के सन्मुख है। मेरे पार्श्व में बैठी हुई न यह तनमन भी मुझे दिखलाई पड़ रही है न सन्मुख खड़े हुए आप। मेरी आँखों में अब और कुछ भी देखने को ज्योति बाकी नहीं रह गई।"

तनमन की आँखों से आँसू झरझर बहने लगे। वृद्ध पिता ने सन्मुख रखे हुई चित्र की ओर दृष्टि डाली और वह कह उठे—"पुत्र तू धन्य है, तेरी मातृभक्ति धन्य है; तेरी बदौलत उस पुण्यात्मा स्वर्गीय विभूति के दर्शन एक बार मुझे फिर प्राप्त हो गए। मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे वह चित्र नहीं है, तेरी माता ही खड़ी हम सब की ओर देख रही है।"

मुनीश ने वह प्रशंसा के शब्द अपने पिता के मुँह से सुने, उसकी उन ज्योतिहीन पूरी खुली हुई आँखों से कुछ आँसू टपक पड़े, उसकी हृदय की गति बन्द हो गई और उसका निर्जीव शरीर तनमन की गोद में से लुढ़कता हुआ माता के चित्र के सम्मुख जा पड़ा। चित्रकार कीर्तेन्द्र ने यह ख़बर सुनी तो उसका भी हृदय फट गया।

× × ×

उस दिन सन्ध्या के समय चित्रकार कीर्तेन्द्र वर्मा और उनके उत्तराधिकारी की चिताएँ अपनी लपटों को जब ढलते हुए सूर्य की लाली से मिलाने लगीं, तो सूखे काठ-सा मुख लिए हुए तनमन उस ओर देखती रही।

देश के सर्वश्रेष्ठ कला के भवन में चित्रकार मुनीश गुप्त की वह अमर कलाकृति लगाई गई और उस पर लिख कर लगाया गया—"प्रसिद्ध चित्रकार कीर्तेन्द्र वर्मा के शिष्य मुनीश गुप्त ने अपनी माता का यह चित्र अपनी स्मृति से बनाया था।"।

और उस महान् कलाकृति के लिए तनमन ने कितना त्याग किया था यह किसने जाना!
